इकाई – 1
पृथ्वी तंत्र तथा पारिस्थितिकीय कारक
(Earth System and Ecological Factors)

परिचय

सौर तंत्र (Solar System)

हमारा ब्रह्माण्ड सूर्य, विभिन्न ग्रहों, पृथ्वी, चन्द्रमा तथा लाखों तारों से मिलकर बना है। इन तारों में सूर्य भी एक तारा है जो पृथ्वी के सबसे नजदीक स्थित है। यह पृथ्वी से 1.5 करोड़ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। सूर्य के चारों ओर घेरे में असंख्य क्षुद्रग्रह (Asteroid) तथा धूमकेतु (Comets) पाये जाते हैं। सूर्य और उसके परिवार को सौरमण्डल कहते हैं। सौरमण्डल में सूर्य मध्य में होता है तथा उसके चारों ओर विभिन्न ग्रह चक्कर लगाते रहते हैं (चित्र 1.1)। पूर्व में सौरमण्डल के नौ ग्रह माने जाते थे। बुध (Mercury), शुक्र (Venus), मंगल (Mars), बृहस्पति (Jupiter), शनि (Saturn), अरूण (Uranus), वरूण (Neptune), पृथ्वी (Earth), यम (Pluto) परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक मान्यतानुसार प्लूटो को ग्रह का दर्जा नहीं दिया गया है। अतः वर्तमान में सूर्य के कुल आठ ग्रह हैं।

सौरमण्डल में पाये जाने वाले 8 ग्रहों का विवरण निम्न प्रकार है –

1. बुध (Mercury) – सूर्य के सबसे नजदीक ग्रह है। इसका जो भाग सूर्य के सामने आता है उसका तापमान 427° सेल्सियस होता है। यहाँ वायुमण्डल नहीं पाया जाता है।
2. शुक्र (Venus) – यह पृथ्वी के सबसे नजदीक ग्रह है जो पृथ्वी से 40 लाख किमी दूर है। यह अत्यन्त गर्म ग्रह है जिसका तापक्रम 480° C है। इसके वायुमण्डल में 96% CO_2, SO_2 एवं CO जैसी गैसें पाई जाती हैं।
3. पृथ्वी (Earth) – यह सौरमण्डल का एक ऐसा ग्रह है जहाँ पर जीव जन्तु, पौधें आदि पाये जाते हैं क्योंकि पृथ्वी पर ही जल व वायु की उपस्थिति है जो जीवन के लिए आवश्यक है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर लट्टू की तरह अपनी धुरी पर घूमती

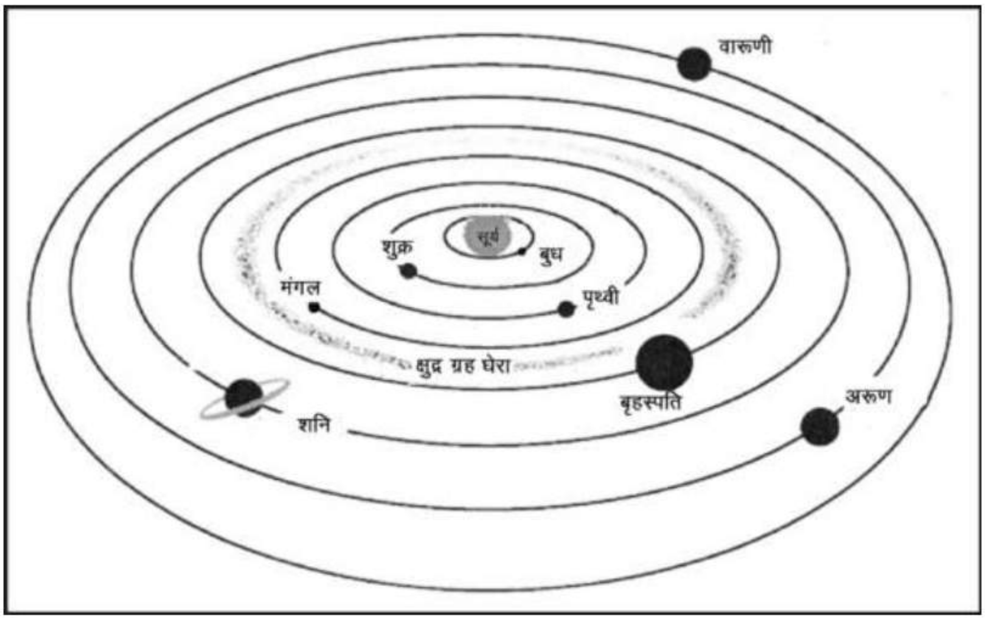

चित्र 1.1: सूर्य एवं उसकी परिक्रमा करते ग्रह

रहती है जिससे 24 घण्टे का दिन व रात का चक्र बनता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाने के साथ–साथ सूर्य के चारों ओर भी चक्कर लगाती है जिसमें 365¼ दिन लगते हैं।

पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा चक्कर लगाता है तथा चन्द्रमा को एक चक्कर पूरा करने में 27.33 दिन लगते हैं। चन्द्रमा पर जल हवा एवं जीवन नहीं पाया जाता है।

4. मंगल (Mars) – यह भी पृथ्वी के नजदीक का ग्रह है। इसे लाल ग्रह भी कहते हैं। इसमें 85% CO एवं लाल धूल है। यह अन्य ग्रहों की तुलना में ठण्डा ग्रह है लेकिन अभी भी इस पर जीवन की उपस्थिति के बारे में पूर्णतः मान्यता नहीं है।

5. बृहस्पति (Jupiter) – यह सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है तथा इसे अमोनिया के बादलों का गोला भी कहते हैं जो अत्यन्त तेजी से घूमता रहता है। इसकी सतह भी ठोस नहीं है।

6. शनि (Saturn) – इसमें मुख्यतः हाइड्रोजन एवं हीलियम गैस पाई जाती है। इसमें 90% नाइट्रोजन भी होती है। इसका तापमान 187° से रहता है। इसके चारों ओर एक घेरा पाया जाता है। इस पर हाइड्रोजन सायनाइड जैसी विषैली गैस पाई जाती है।

7. अरूण (Uranus) – यह बहुत ही ठण्डा ग्रह है। सूर्य से दूरी के दृष्टि से सातवें स्थान पर है। यह वरूण के साथ सौरमण्डल का सबसे बाहरी ग्रह है। इसकी घूर्णन धूरी सबसे अधिक झुकी हुई है।

8. वरूण (Neptune) – पृथ्वी के मुकाबले बहुत ही छोटा, ठण्डा ग्रह है। इस पर अत्याधिक अंधकार रहता है। इसकी सतह जमी हुई मीथेन से ढकी रहती है। सौरमण्डल का अंतिम ग्रह है तथा सूर्य से सबसे दूर स्थित है।

पृथ्वी का उद्गम (Origin of Earth)

पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में समय–समय विभिन्न वैज्ञानिकों ने अलग–अलग सिद्धान्त प्रस्तुत किये उसमें सबसे अधिक मान्यता बिग बैंग के सिद्धान्त को मिली है। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का उद्भव एक विशाल विस्फोट से हुआ जिसके कारण धूल मिट्टी एवं गैस घर्षण के कारण गोल–गोल घूमने लगे इसके फलस्वरूप केन्द्रीय स्थान अत्यधिक गर्म हो गया उससे सूर्य की उत्पत्ति हुई, साथ ही इस धूल और गैस के गोले के किनारों से धूल के बड़े–बड़े टुकड़े टूट कर गिरे इससे गेंद के आकार के विभिन्न ग्रहों का निर्माण हुआ।

लगभग 4.5×10^{9} वर्ष पहले पृथ्वी एक विस्फोट के साथ अलग हुई जो कि अत्यधिक गर्म सफेद रंग के गैस और धूल के समूह के रूप में थी। काफी समय बीतने के पश्चात् धूल और गैस के संघनित होने से यह चट्टान में बदल गई। उसके लाखों वर्षों के बाद पृथ्वी के बाहरी सतह तो ठण्डी हो गई लेकिन उसका भीतरी हिस्सा अब भी बहुत गर्म है। पृथ्वी के ठण्डी होने से उसकी बाहरी परत सख्त हो गई और भूमि में परिवर्तित हुई तथा संघनित जल वाष्प से जल बना जिससे गड्ढे भरे और समुद्रों का निर्माण हुआ।

पृथ्वी की संरचना (Structure of Earth)

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना में तीन मुख्य परतें पायी जाती हैं (चित्र 1.2) –

1. पटल या पर्पटी (Sial) – यह सबसे बाहरी परत है जो लगभग 100 कि.मी. मोटी है। पटल की ऊपरी परत अवसादी (Sedimentry) पदार्थों से बनी है जिसके नीचे आग्नेय व कायान्तरित चट्टानें हैं। तथा पटल की निचली परत बेसाल्टी व अल्ट्रा बेसाल्टी चट्टानों से बनी है। महाद्वीपों का निर्माण सिलिका व एल्युमिनियम से हुआ है जिसे स्याल (Si + Al) कहते हैं। जबकि महासागरों का निर्माण सिलिका व मैग्नीशियम से हुआ है। इसे स्याम (Si + Mg) कहते हैं। पटल पृथ्वी के कुल आयतन की मात्र 0.5% है।

2. प्रावार (Mantle) – यह पृथ्वी की सतह से 100–2900 कि.मी. के मध्य स्थित है। मेंटल के बाहरी परत अंशत स्यामिक है तथा प्लास्टिक संहति की तरह व्यवहार करती है। इस परत में सिलिकन (Si), मैग्नीशियम (Mg), आयरन (Fe) का भारी मिश्रण तथा निकेल (Ni) पाये जाते हैं। यह परत पृथ्वी के कुल आयतन की 16% है।

3. केन्द्रक या कोर (Core) – यह पृथ्वी की सबसे भीतरी परत

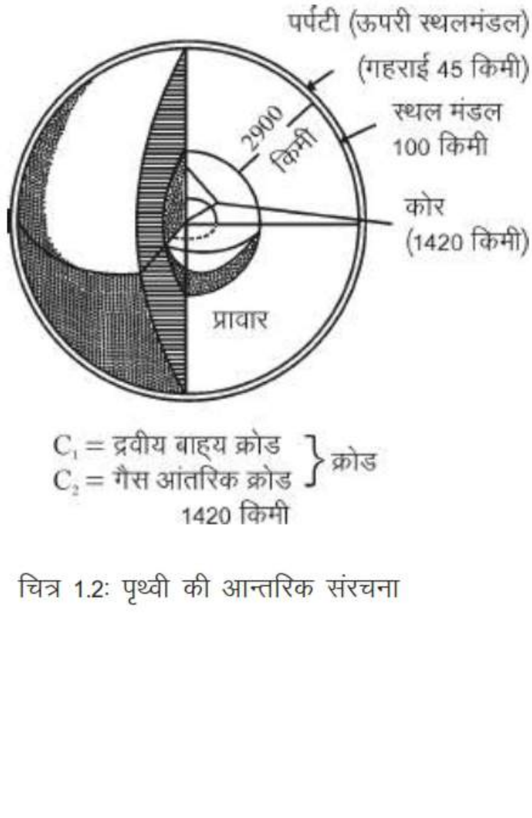

चित्र 1.2: पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

है जो 2900–6400 कि.मी. की गहराई में स्थित है। यह पृथ्वी के कुल आयतन का 83% है। इस परत में उच्च घनत्व के भारी धातु व सिलिकेट का मिश्रण पाया जाता है। यह मुख्यतः निकेल (Ni) व आयरन (Fe) से बनी है। यह भाग गर्म एवं तरल है। यहाँ का तापमान 5000°C के आसपास है।

पृथ्वी के वायुमण्डल का विकास (Evplution of Atmosphere on Earth)

पृथ्वी पर वायुमण्डल की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह प्रश्न उतना ही जटिल है जितना कि स्वयं पृथ्वी की उत्पत्ति। जलवायुशास्त्री क्रिचफील्ड के अनुसार आज से लगभग 50 करोड़ वर्ष पूर्व (कैम्ब्रियन युग) वायुमण्डल अस्तित्व में आया होगा।

वैज्ञानिकों के अनुसार सर्वप्रथम हीलीयम तथा हाइड्रोजन जैसी अत्यधिक हल्की गैसें पृथ्वी से अलग हुई होगी जिनसे प्राथमिक वायुमण्डल का निर्माण हुआ होगा। वर्तमान में यह प्रमाणित है कि ये दोनों गैसें वायुमण्डल में अत्यधिक ऊँचाई पर पायी जाती है। कालान्तर में प्राथमिक वायुमण्डल में निरन्तर विकास व परिवर्तन होते रहे तथा स्थलमण्डल व जलमण्डल का विकास होता गया। पृथ्वी का भार 6.6 × 10[illegible] टन है तथा सम्पूर्ण वायुमण्डल का भार 5.6 × 10[illegible] टन है। वायुमण्डल का 99% भाग पृथ्वी के 30 कि.मी. की ऊँचाई तक केन्द्रित है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण वायुमण्डल इससे बंधा हुआ है। वायुमण्डल की ऊपरी स्तर की सीमा 10000 कि.मी. से प्रारम्भ होती है। उपग्रहों से प्राप्त आधुनिक जानकारी के अनुसार 100 कि.मी के बाद हल्की गैसें अलग हो जाती है। पृथ्वी से 100–200 कि.मी की ऊँचाई पर नाइट्रोजन परत है, उसके बाद पृथ्वी से 200–1100 कि. मी. तक ऑक्सीजन की परत तथा 1100–3500 कि.मी. तक हीलीयम की परत है उसके ऊपर हाइड्रोजन की परत है जिसके फैलाव की ऊपरी सीमा स्पष्टतः जानकारी में नहीं है।

वायुमण्डल पृथ्वी पर आने वाली हानिकारक विकिरणों से रक्षा करता है। इस प्रकार यह ग्रीन हाउस प्रभाव की तरह कार्य करता है साथ ही वायुमण्डल में प्रतिरोधात्मक शक्ति होने के कारण अंतरिक्ष से आने वाले आकाशीय उल्का पिण्ड पृथ्वी पर पहुंचने से पहले ही नष्ट हो जाते हैं।

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति (Origin of Life on Earth)

ऐसा माना जाता है कि कोई 15–20 खरब वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई तथा 4.5 खरब वर्ष पूर्व पृथ्वी का निर्माण हुआ होगा। लेकिन उस समय पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं था। वायुमण्डल में प्रारम्भ में मीथेन, अमोनिया, हाइड्रोजन, कार्बनडाइऑक्साइड गैसें थी। जलीय वाष्प भी वायुमण्डल में प्रचुर मात्रा में उपस्थित था लेकिन मुक्त ऑक्सीजन न होने के कारण जीवन की कोई कल्पना नहीं की जा सकती थी।

जैसे–जैसे पृथ्वी ठण्डी होती गयी, जलवायु में संघनन की क्रिया होने से वह जल में परिवर्तित हुई, इससे वर्षा होकर जलाशयों का निर्माण हुआ और पानी में जीवन के अणु उत्पन्न हुए। इनसे ही आगे चलकर जीवाणुओं का विकास हुआ। ये जीवाणु ही सबसे आदिम व सबसे सरल जीव थे। जीवाश्मीय प्रमाणों के आधार पर जीवाणुओं की उत्पत्ति 3.5 अरब वर्ष पूर्व मानी गयी है। कालान्तर में (लगभग 2 अरब वर्ष पूर्व) विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं में से किसी एक में क्लोरोफिल नामक वर्णक का विकास हुआ और ये क्लोरोफिल युक्त जीवाणु जल व कार्बनडाइऑक्साइड का उपयोग कर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा ऑक्सीजन छोड़ते थे। इस प्रकार ऑक्सीजन वायुमण्डल में एकत्रित होना शुरू हुई, और एक समय पर इसकी मात्रा वायुमण्डल में 21% हो गयी।

समय बीतने के साथ जीवाणुओं से प्रोटिस्ट (प्रजीन) विकसित हुए। जीवाणु व प्रोटिस्ट दोनों एक कोशिकीय जीव है उसके बाद बहुकोशिकीय फफूंदों का उद्‌भव हुआ। तथा बाद में पौधे व जन्तुओं का विकास हुआ (चित्र 1.3)। वर्तमान में जीवधारियों में पाँच जगत सम्मिलित है – मोनेरा, प्रोटिस्टा, फफूंद, प्लांटी और एनीमेलिया।

वायुमण्डल का संघटन (Composition of Atmosphere)

वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसों के साथ जलवाष्प एवं धूल के कण पाये जाते हैं। वायुमण्डल के निचले हिस्से में भारी गैंसे पायी जाती है जैसे कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन तथा ये सक्रिय गैसें है। जबकि अधिक ऊँचाई पर निष्क्रिय गैसें पायी जाती है जैसे हीलियम, नियॉन, क्रिप्टॉन आदि।

उपरोक्त गैसों में नाइट्रोजन व ऑक्सीजन मिलकर वायुमण्डल का (99%) भाग बनाती है। नाइट्रोजन गैसे सर्वाधिक मात्रा में (78%) में पायी जाने वाली गैस है (तालिका 1.1)। वही ऑक्सीजन (21% मात्रा) प्राण वायु कहलाती है इसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। कार्बनडाइऑक्साइड यद्यपि अत्यन्त कम मात्रा (0.03%) में उपलब्ध है तथापि यह वायुमण्डल के लिए आवश्यक है। यह ताप का अवशोषण कर वायुमण्डल की परतों को गर्म रखती है।

तालिका 1.1 : वायुमण्डल में गैसों का प्रतिशत संघटन

गैस	प्रतीक	प्रतिशत आयतन
नाइट्रोजन	N_2	78.088
ऑक्सीजन	O_2	20.949
आर्गन	Ar	0.93
कार्बनडाइऑक्साइड	CO_2	0.03
नियॉन	Ne	0.0018

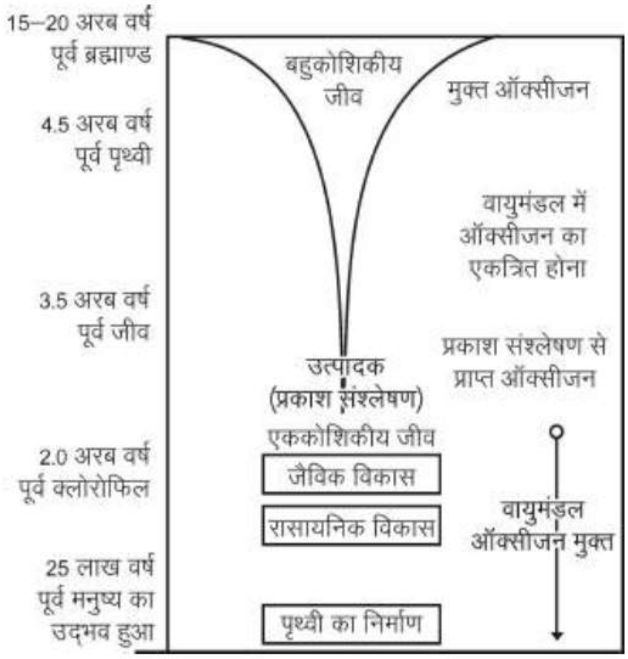

चित्र 1.3 : पृथ्वी पर जीवन का विकास

ओजोन	O,	0.00006
हाइड्रोजन	H	0.00005
हीलीयम	He	0.0005
क्रिप्टॉन	Kr	अज्ञात
जेनॉन	Xe	अज्ञात
मिथेन	CH,	अज्ञात

ओजोन एक सक्रिय गैस है जो वायुमण्डल में अल्प मात्रा में बहुत ऊँचाई पर पायी जाती है। यह सूर्य से आने वाली पराबैंगनी विकिरणों को सोख लेती है तथा पृथ्वी पर नहीं पहुंचने देती है, इस प्रकार यह पराबैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करती है। वर्तमान में क्लोरोफ्लोरोकार्बन जैसी हानिकारक गैसों के अत्यधिक विसर्जन से इस ओजोन परत को नुकसान पहुंचा है जिससे पराबैंगनी विकिरणों से होने वाले रोगों का खतरा बढ़ गया है।

जलवाष्प – तापमान और आर्द्रता में परिवर्तन के कारण वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। ध्रुवीय क्षेत्रों के पास जलवाष्प कम जबकि विषुवतीय क्षेत्रों के पास सर्वाधिक मात्रा में जलवाष्प पायी जाती है। यह जलवाष्प सौर विकिरणों को सोख लेती है और धरातल के तापमान को सम बनाये रखती है। इस प्रकार जलवाष्प मौसम और जलवायु के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

धूल कण – वायुमण्डल में गैस और जलवाष्प के अतिरिक्त जितने भी ठोस कण पाये जाते हैं वे धूल कण ही है। ये वायुमण्डल की निचली परतों में तैरते रहते हैं। ये धूल कण विकिरणों के कुछ भाग को सोखते है तथा उनका प्रकीर्णन व परावर्तन करते है। इस प्रकार इनके द्वारा उषाकाल एवं गोधूलि की अवधि व तीव्रता निर्धारित होती है। सांय धूल कणों के चयनात्मक प्रकीर्णन के कारण आकाश नीला तथा सूर्योदय व सूर्यास्त के समय आकाश लाल दिखाई देता है। शुष्क प्रदेशों के वायुमण्डल में आर्द्र प्रदेशों की तुलना में अधिक धूल कण पाये जाते हैं।

पारिस्थितिकी परिचय (Introduction to Ecology)

यह विज्ञान की वह नवीन शाखा है जो जीवों तथा उसके पर्यावरण के साथ अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करती है। इकोलॉजी (Ecology) शब्द सर्वप्रथम राइटर द्वारा काम में लिया गया। यह दो ग्रीक शब्दों से मिलकर बना है पहला ओइकोज (Oikos) जिसका अर्थ है घर या आवास तथा दूसरा लोगोज (Logos) जिसका अर्थ है अध्ययन (The study of), अर्थात आवास का अध्ययन। लेकिन राइटर ने इसे परिभाषित नहीं किया। हेकल (1869) ने इसे सर्वप्रथम जीवित जीवों तथा पर्यावरण के मध्य आपसी सम्बन्ध के द्वारा परिभाषित किया।

ओडम (Odum, 1969) ने इसे पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना एवं कार्य के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया। आधुनिक अर्थों में पारिस्थितिकी को विभिन्न जैविक स्पेक्ट्रमों में वर्गीकृत कर अध्ययन किया जाता है, जैविक स्तरों में से कुछ प्रमुख निम्न है– पारिस्थितिक तंत्र, समुदाय, समष्टि, जीव, कोशिका एवं जीन (चित्र 1.4)। इन्हें जैविक स्पेक्ट्रम के विभिन्न स्तरों के रूप में लिया जाता है। जैविक स्पेक्ट्रम के प्रत्येक स्तर की पर्यावरण के साथ अपनी व्यक्तिगत अन्तःक्रिया होती है।

पारिस्थितिकी की शाखाएं (Branches of Ecology)

1. स्वपारिस्थितिकी (Autecology) – यह किसी जाति विशिष्ट का उसके पर्यावरण के सम्बन्ध में अध्ययन है। इसमें उस जाति के भौगोलिक वितरण, बाह्य आकारिकी, जीवन चक्र एवं पर्यावरणीय कारकों से उसकी अन्योन्यक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

2. समुदाय पारिस्थितिकी (Synecology) – इससे किसी सम्पूर्ण पादप समुदाय की पर्यावरण से अन्योन्य क्रिया का अध्ययन किया जाता है। अतः किसी समुदाय के जन्म, वृद्धि आदि के अध्ययन को समुदाय पारिस्थितिकी कहा जाता है।

3. आवास पारिस्थितिकी (Habitat ecology) – यह किसी जीव का उसके आवास के संदर्भ में अध्ययन का विज्ञान है। पौधे अपनी शारीरिक संरचना, अनुकूलन आदि अपने आवास के अनुरूप परिवर्तित कर लेते हैं, उदाहरणार्थ मरुस्थलीय पादपों के आवासीय लक्षण जलीय पादपों से अलग होते हैं।

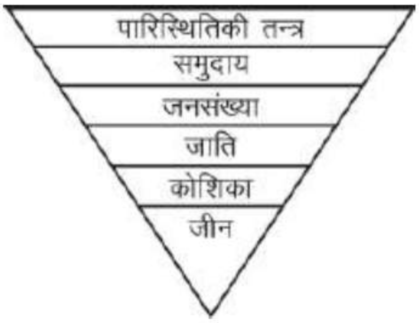

चित्र 1.4 : पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न स्तर

4. जीन पारिस्थितिकी (Gene ecology) – आनुवंशिकी के सन्दर्भ में जब पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है तो यह जीन पारिस्थितिकी शाखा के अन्तर्गत आता है। पारिस्थितिकी इन शाखाओं को कई उपशाखाओं में बांटा गया है (चित्र 1.5)।

पारिस्थितिकी विज्ञान के क्षेत्र एवं उद्देश्य (Scope and Aims of Ecology)

मानव की तीव्र विकास करने की प्रवृत्ति ने पर्यावरण को कई नुकसान पहुंचाए हैं जिसके भयावह परिणाम हमें आने वाले समय में भुगतने पड़ेगें, इस हेतु सदैव तैयार रहना चाहिए। स्थिति पर नियन्त्रण हेतु हमें पर्यावरण व पारिस्थितिकी का पूर्ण या आधारभूत ज्ञान होना आवश्यक है। पारिस्थितिकी इतना सरल विषय है कि इसका अध्ययन कोई साधारण व्यक्ति भी कर सकता है।

पारिस्थितिकी में पर्यावरण में पैदा हो रहे असन्तुलन का ज्ञान करवाया जाता है साथ ही इस असन्तुलन को कैसे सन्तुलित किया जा सकता है इस हेतु पर्याप्त सुझाव भी दिए जाते हैं। अत्यधिक मानव हस्तक्षेप के कारण पारिस्थितिकी में उत्पन्न आपदाओं की वस्तुस्थिति का ज्ञान भी इसी विषय का हिस्सा है। इन आपदाओं से बचाव तभी हो पाएगा जब जनसाधारण को वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी होगी व बचाव के उपाय उन्हें बताए जाएगें। अतः पर्यावरण से मित्रता के साथ मानवीय विकास हेतु पारिस्थितिकी विज्ञान को जनसाधारण तक पहुंचाना महत्वपूर्ण है। वर्तमान में मानव निम्न पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है–

1. प्राकृतिक संसाधनों की कमी,
2. मृदा प्रदूषण व उर्वरता में कमी,
3. जल, वायु एवं ध्वनि प्रदूषण,
4. मानव की अन्य संसाधनों पर निर्भरता,
5. बढ़ती आबादी, घटते संसाधन,
6. मृदा अपरदन, एवं
7. प्राकृतिक आपदाएं आदि।

इन परिस्थितियों में मानव जीवन को स्वस्थ्य एवं सुरक्षित देख पाना मुश्किल जान पड़ता है, लेकिन इस हेतु कई प्रयास किए जा रहे हैं– जैसे विश्वव्यापी कार्यक्रम 'अन्तर्राष्ट्रीय जीव विज्ञान

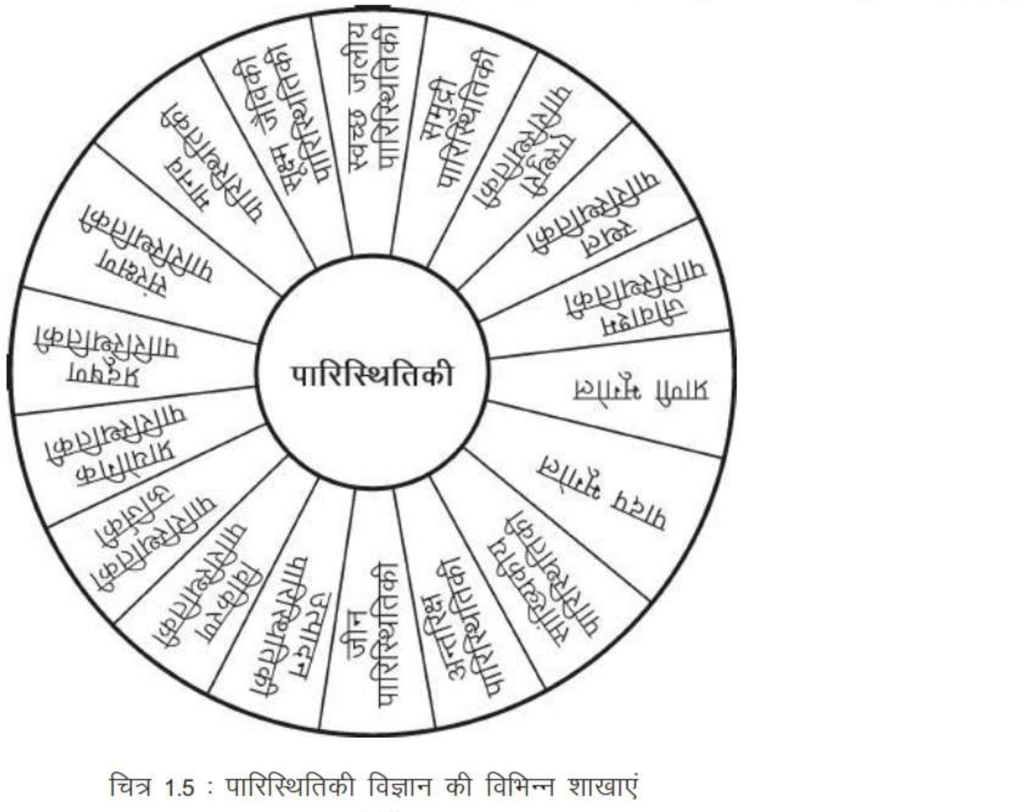

चित्र 1.5 : पारिस्थितिकी विज्ञान की विभिन्न शाखाएं

कार्यक्रम' (International Biological Programme) चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य 'उत्पादन का जैविक आधर और मानव कल्याण' (Biological Basis of Productivity and Human Welfare) है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न पारिस्थितिकी महत्व के क्षेत्रों में पारिस्थितिकी विज्ञ नियुक्त किए गए हैं जो उस क्षेत्र विशेष के संसाधनों का अध्ययन कर उनकी सुरक्षित उत्पादकता हेतु उपयोगी सुझाव क्षेत्र के जनसाधारण को देते हैं। इस कार्यक्रम के अलावा 'मानव एवं जैव मण्डल' (Man and Biosphere; MAB) कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया गया है।

पर्यावरणीय कारक (Environmental Factors)

पर्यावरण में व्याप्त कई कारक जीवों को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं तथा जीवों के द्वारा स्वयं भी प्रभावित होते हैं। ये समस्त कारक पर्यावरणीय कारक कहलाते हैं।

जीवों को प्रभावित करने वाले ये कारक जैविक (Biotic) या अजैविक (Abiotic) हो सकते हैं। जैविक व अजैविक प्रकार के विभिन्न कारक समग्र रूप से जीवों को प्रभावित करते हैं। अतः किसी क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाली वनस्पति पर कुछ आधारभूत कारकों का समान रूप से प्रभाव पाया जाता है। फलतः इन वनस्पतियों में कुछ समानताएं भी देखने को मिलती है। उस क्षेत्र विशेष की इन पर्यावरण दशाओं को क्षेत्र की पर्यावरणीय जटिलताएं कहते हैं। इन कारकों के वर्गीकरण में जैविक व अजैविक कारकों के अतिरिक्त इन्हें निम्न दो वर्गों में बांट कर भी अध्ययन किया जाता है–

1. प्रत्यक्ष कारक (Direct factor) – इनमें प्रकाश, ताप, आर्द्रता, मृदा–वायु, मृदा जल, पोषक तत्व आदि आते हैं।
2. अप्रत्यक्ष कारक (Indirect factor) – इसमें भूमि की बनावट, ह्यूमस, ऊंचाई, वायु तथा ढाल आदि आते हैं।

अधिकांश पारिस्थितिकीविज्ञों ने इन कारकों को प्रमुख चार वर्गों में बांटा है–

1. जलवायवीय कारक (Climatic factors)
   - (i) प्रकाश
   - (ii) वायुमण्डलीय तापमान
   - (iii) वर्षा
   - (iv) वायु की आर्द्रता
   - (v) वायुमण्डलीय गैसें
2. स्थलीय या भू–आकृतिक कारक (Topographic or physiographic factors) – ये कारक पृथ्वी के भौतिक भूगोल से सम्बन्धित हैं जैसे –
   - (i) ऊंचाई
   - (ii) पर्वत शृंखलाओं व घाटियों की दिशा
   - (iii) ढालों का खुलापन और तीव्रता।
3. मृदीय कारक (Edaphic factors)
4. जैविक कारक (Biotic factors)

जिस प्रकार ये पर्यावरणीय कारक जीवों को प्रभावित करते हैं उसी प्रकार ये कारक आपस में एक दूसरे कारक को भी प्रभावित करते हैं अतः इन कारकों में आपस में भी अन्तःक्रिया पाई जाती है उदाहरणतः तापमान बढ़ने पर क्षेत्र की आर्द्रता कम हो जाती है या प्रकाश की तीव्रता बढ़ने पर प्रकाश संश्लेषण की दर भी प्रभावित होती है। इस प्रकार जीवों पर सभी पर्यावरणीय कारकों का सम्मिलित प्रभाव पड़ता है (चित्र 1.6 एवं 1.7)।

सभी पर्यावरणीय कारकों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है–

1. जलवायवीय कारक (Climatic factors) – इन कारकों में वर्षण, तापमान, आर्द्रता, वायु, प्रकाश आदि भौतिक कारक सम्मिलित हैं। ये सभी जलवायवीय कारक संयुक्त रूप से किसी क्षेत्र विशेष को विशिष्टता प्रदान करते हैं। इन सभी जलवायवीय कारकों का विस्तार से विवरण यहां दिया जा रहा है–

(i) प्रकाश (Light) – प्रकाश, भौतिक पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण कारक है जो जीवों के लिए ऊर्जा का आधारभूत स्रोत है। इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा लगभग सभी जीवों में अभिलाक्षणिक जीवन क्रियाओं का संचालन करती है। अतः प्रकाश को उन तीन महत्वपूर्ण कारकों में शामिल किया जाता है जिनके द्वारा पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव सम्भव हो पाया है।

(a) सूर्य (Sun) – जीवों के लिए ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य है। यह हाइड्रोजन व हीलियम से बना गैसों का विशालकाय पिण्ड है जिससे सतत रूप से अपार ऊर्जा, प्रकाश व ऊष्मा के रूप में निकालती रहती है। इस प्रकार उत्सर्जित ऊष्मा ऊर्जा को सूर्यताप या सूर्य विकिरण कहा जाता है।

प्रकाश प्रियता एवं प्रकाश की आवश्यकता के आधार पर पादपों को निम्न दो समूहों में वर्गीकृत किया गया है–

1. प्रकाश प्रिय पादप (Heliophytes) – ऐसे पादप जो सूर्य के सीधे प्रकाश में उगते हैं सूर्य तापी या प्रकाश प्रिय कहलाते हैं। उदाहरणतः एमेरन्थस (*Amaranthus*), जेन्थियम (*Xanthium*), बिटुला (*Betula*), पोपुलस (*Populus*), सेलिक्स (*Salix*)। इन पादपों में कुछ विशिष्ट अनुकूलन पाए जाते हैं जो सूर्य के सीधे प्रकाश में इनकी नियत वृद्दि को बनाए रखते हैं। इन अनुकूलनों का विवरण आगे तालिका 1.2 में दिया गया है।

2. छाया प्रिय पादप (Sciophytes) – वे पादप जो कम प्रकाश या छाया में उगते हैं व वृद्धि करते हैं, छाया प्रिय या छाया तापी पादप कहलाते हैं। उदाहरणतः एक्लिपफा (*Aclypha*), फेगस (*Fagus*), एबीज (*Abies*), पिसिया (*Picea*) आदि।

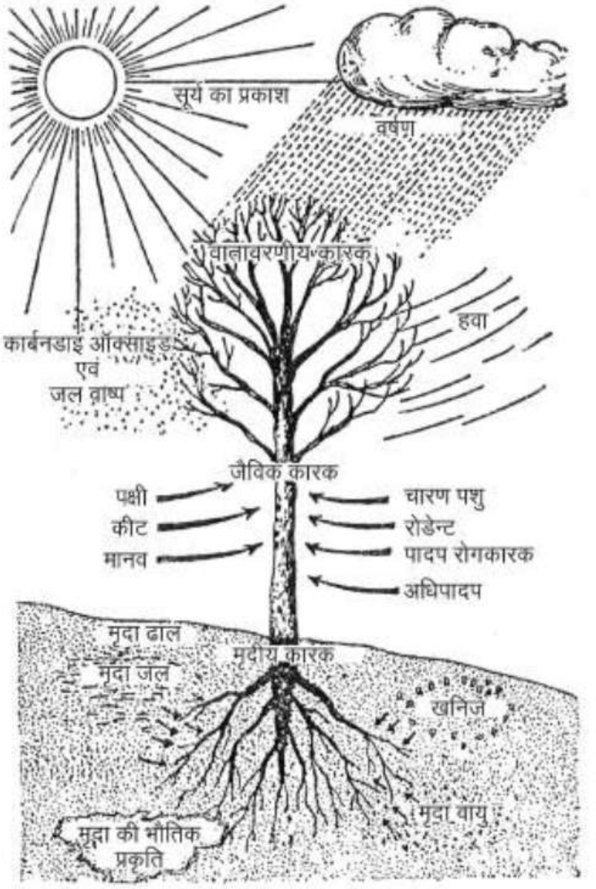

चित्र 1.6
पौधे को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारक

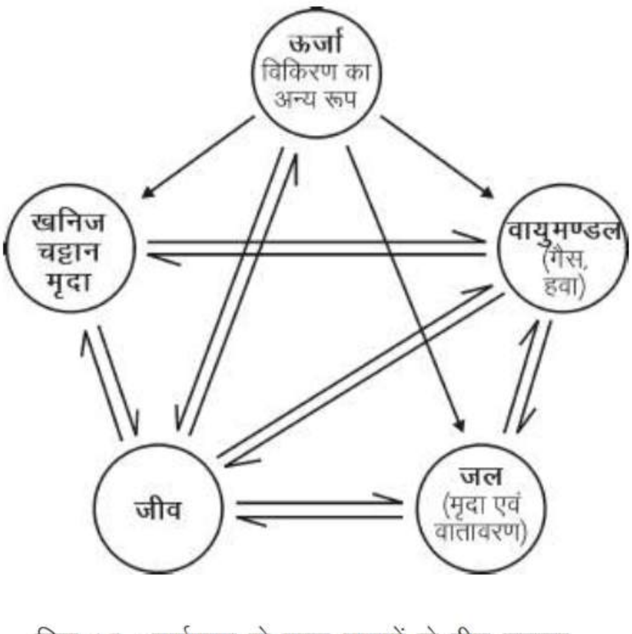

चित्र 1.7 : पर्यावरण के मुख्य घटकों के बीच परस्पर संबंधों को दर्शाता आरेख

प्रकाश के निम्न तीन लक्षण पादपों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती है–

1. प्रकाश तीव्रता (Light intensity)
2. प्रकाश गुणवत्ता (Light quality)
3. प्रकाश दीप्तिकाल (Light duration)

1. प्रकाश तीव्रता (Light intensity): सूर्योदय से दोपहर तक प्रकाश तीव्रता (Light intensity) बढ़ती है और दोपहर से सूर्यास्त तक घटते–घटते शून्य हो जाती है इसके अलावा धूल, बादल, प्रदूषण के द्वारा भी सूर्य के प्रकाश की तीव्रता प्रभावित होती है। प्रकाश की अलग–अलग तीव्रता को पसन्द करने के आधार पर पादपों के दो प्रकारों सूर्यतापी व छायातापी पादपों का विवरण पहले दिया जा चुका है। कुछ पादप सूर्य की दिशा में अपने पर्णकोर को घुमा देते हैं 'दिक सूचक पौधे' (Compass plant) कहलाते हैं। सूरजमुखी का पादप भी प्रकाश संवेदी होता है जिसके कारण इसके शीर्ष भाग पर खिले फूल की दिशा पूर्व से पश्चिम की ओर बदलती रहती है। क्योंकि छाया में रहने वाले तने में अतिरिक्त वृद्धि होती है जिससे शीर्ष की दिशा सूर्य की ओर मुड़ जाती है।

2. प्रकाश की गुणवत्ता (Light quality): प्रकाश की गुणवत्ता में प्रकाश में व्याप्त विभिन्न रंग आते हैं। पौधे की पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल लाल व नीले रंग के प्रकाश का अधिकतम अवशोषण करते हैं। प्रकाश की गुणवत्ता का प्रभाव समुद्री पादपों में अच्छा देखने को मिलता है। समुद्र की गहराई के अलग–अलग स्तर पर अलग–अलग तरंगदैर्ध्य का प्रकाश ही पहुंच पाता है। अतः प्रकाश की गुणवत्ता के अनुसार ही विभिन्न शैवालों की उपस्थिति समुद्र की अलग–अलग गहराई पर देखी जा सकती है।

3. प्रकाश दीप्तिकाल (Light duration): प्रकाश दीप्तिकाल के आधार पर पादपों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–

(i) लघु प्रदीप्तिकाली पौधे (Short day plants)
(ii) दीर्घ प्रदीप्तिकाली पौधे (Long day plants)
(iii) प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (Day neutral plants)

दिन के प्रकाश का पूर्ण आवर्त काल जो पौधों को प्राप्त होता है, दीप्तिकाल (Photoperiod) कहलाता है। दीप्तिकाल के आधार पर पादपों के अध्ययन को दीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहते हैं।

लघु प्रदीप्तिकाली पौधे (Short day plants) : जिनके लिए 12 से 14 घण्टों (क्रान्तिक समय) से कम दीप्तिकाल होता है। उदाहरणतः सेल्विया स्पलेन्डन्स (*Salvia splendens*), धतूरा स्ट्रेमोनियम (*Datura stramonium*) आदि।

दीर्घ प्रदीप्तिकाल पौधे (Long day plants): वे पादप जिन्हें

तालिका 1.2 : सूर्यतापी व छायातापी पादपों में अन्तर

क्र.सं.	**सूर्यतापी** (Heliophytes)	**छायातापी** (Sciophytes)
1.	तना मोटा, सुदृढ़ व इनमें जाइलम ज्यादा विकसित होता है।	तना अपेक्षाकृत पतला, दुर्बल व जाइलम कम विकसित होता है।
2.	पत्तियां छोटी, हल्के हरे रंग की कटी हुई या संयुक्त पिच्छकी व मोटी होती है।	पत्तियां बड़ी, गहरे हरे रंग की व पतली होती है।
3.	पर्ण मध्योतक में स्पष्ट रूप में दो प्रकार की कोशिकाएं– ऊपर खंभ ऊत्तक व नीचे स्पंजी मृदुतक होती है। अन्तरकोशिकीय अवकाश कम होता है।	केवल एक ही प्रकार की कोशिकाएं (स्पंजी मृदुतक) होती है, इनमें अन्तरकोशिकीय अवकाश अपेक्षाकृत अधिक होता है।
4.	शाखायें अधिक तथा पर्व छोटे होने से पर्व संधियां पास–पास होती है।	शाखाएं कम तथा पर्व लम्बे होने से पर्व संधियां दूर–दूर होती है।
5.	तने व पत्तियों पर रोम अधिक होते हैं।	रोम कम पाये जाते हैं।
6.	पर्णरन्ध्रों की संख्या अधिक होती है। इनकी संख्या निचली सतह पर अधिक व ऊपरी सतह पर कम होती है।	पर्णरन्ध्र संख्या में कम तथा पत्ती की दोनों सतह पर समान संख्या में होते हैं।
7.	ऊपरी बाह्य त्वचा बहुपरतीय एवं लवक रहित होती है।	ऊपरी बाह्य त्वचा एक परत की व दोनों सतहों की कोशिकाएं अपेक्षाकृत पतली परत वाली तथा हरित लवक युक्त होती है।
8.	यांत्रिक ऊत्तक ज्यादा विकसित होती है।	यांत्रिक ऊत्तक कम या अनुपस्थित होती है।
9.	जड़ें अत्यधिक गहरी व संख्या में अधिक तथा पूर्ण शाखित होती है।	जड़ें छोटी व संख्या में कम और अल्प शाखित होती हैं।
10.	पौधों का शुष्क भार अधिक होता है।	पौधों का शुष्क भार कम होता है।
11.	पुष्प जल्दी निकलते हैं तथा इनमें पुष्प व फल उत्पन्न करने की क्षमता ज्यादा होती है।	पुष्प देरी से निकलते हैं तथा इनमें पुष्प और फल पैदा करने की क्षमता बहुत कम या नहीं के बराबर होती है।
12.	कोशिका रस (Cell sap) अधिक अम्लीय व परासरण दाब (Osmotic pressure) अधिक होता है।	कोशिका रस कम अम्लीय व परासरण दाब भी कम होता है।
13.	पौधे में शुष्कता व ताप से बचने की क्षमता होती है।	ये पौधे अधिक शुष्कता व ताप को सहन नहीं कर पाते।
14.	कार्बोहाइड्रेट/नाइट्रोजन का अनुपात अधिक होता है।	कम होता है।
15.	पोटेशियम की मात्रा कम होती है।	अधिक होती है।
16.	बीज के प्रति ग्राम शुष्क भार में अधिक कैलोरी ऊर्जा होती है।	कम होती है।

क्रान्तिक समय से अधिक दीप्तिकाल उपलब्ध रहता है। उदाहरणतः ब्रेसिका रापा (*Brasica rapa*), सिकेल सिरियल (*Secale cereale*) आदि।

प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (Day neutral plants): कुछ पादप जैसे कुकुमिस सेटाइवस (*Cucumis sativus*), सोरगम वल्गेर (*Sorghum vulgare*) आदि प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (Day neutral plants) की श्रेणी में आते हैं अर्थात इनकी वृद्धि हेतु प्रकाश दीप्तिकाल का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है।

उपरोक्त वर्णित प्रकाश के लक्षणों के अलावा भी पादपों में कई क्रियाएं प्रकाश के द्वारा प्रभावित होती है ये निम्न हैं–

1. क्लोरोफिल उत्पादन (Chlorophyll production)
2. ऊष्मीकरण प्रक्रिया (Heating action)
3. वाष्पोत्सर्जन (Transpiration)
4. रन्ध्र गति (Stomatal movement)
5. पादप वितरण (Distribution of plants)
6. पौधों के भागों का सर्वांगीण विकास (Overall development of plant parts)
7. अनुक्रमण (Succession) आदि।

(ii) तापमान (Temperature) – ताप एवं इसमें होने वाले परिवर्तन से क्षेत्रों की वनस्पति भी प्रभावित होती है। वनस्पति पर पड़ने वाले प्रभावों में से कुछ का विवरण यहां दिया जा रहा है–

1. उपापचय (Metabolism) – पादप शरीर में होने वाली समस्त क्रियाओं का नियमन विभिन्न एन्जाइमों द्वारा किया जाता है तथा प्रत्येक एन्जाइम की अधिकतम क्रियाशीलता हेतु एक विशिष्ट तापमान होता है। अतः ताप में परिवर्तन से एन्जाइमों की क्रियाशीलता प्रभावित होती है। फलतः पादप कार्यिकी जैसे वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन आदि प्रभावित होते हैं।

2. प्रजनन (Reproduction) – पौधों में फूल बनने की प्रक्रिया तापकालिता (Thermoperiodism) द्वारा अर्थात तापमान में उतार–चढ़ाव के दैनिक चक्र (Diurnal fluctuation) द्वारा प्रभावित होती है। पौधों की घटना विज्ञान (Phenology) (पौधों की आवर्ती प्रक्रियाओं, फूल बनते समय जलवायु के सम्बन्ध का अध्ययन) में तापमान एक महत्वपूर्ण कारक है।

3. वृद्धि तथा विकास (Growth and Development) – तापमान में अत्यधिक वृद्धि या कमी दोनों, पादपों के लिए नुकसानदायक होते हैं। तापमान में अत्यधिक कमी से सूखापन (Desiccation), ठिठुरन (Chilling injury) क्षति और प्रशीतन क्षति (Freezing injury) आदि द्रुतशीतन क्षति (Cold injury) होती है। हालांकि कुछ बहुवर्षीय पौधों (Perennials) में अत्यन्त कम तापमान सहने की क्षमता होती है, इसे शीत प्रतिरोधकता (Cold resistance) कहते हैं। तापमान में अत्यधिक वृद्धि पादप वृद्धि को रोक देती है व पादप की मृत्यु भी हो जाती है। ताप वृद्धि से पादपों में श्वसन, वाष्पोत्सर्जन, प्रोटीन उपापचय सम्बन्धी होने वाली क्षति को तापीय क्षति (Heating injury) कहा जाता है।

4. वितरण पर प्रभाव (Effect on distribution) – तापमान के आधार पर संसार की समस्त वनस्पतियों को निम्न वर्गों में बांटा गया है (तालिका 1.3)।

तापमान के आधार पर वनस्पति के वितरण को समझने के लिए पश्चिमी हिमालय पर ऊंचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण एक सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है। ऊंचाई की ओर बढ़ने पर तापमान में कमी आती जाती है। हिमालय के आधार से 1200 मी. की ऊंचाई तक मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed decedous forests) मिलते हैं। इससे ऊपर 3300 मीटर की ऊंचाई पर शंकुधारी वन (Coniferous forests) पाए जाते हैं। ऐसे स्थान पर जलवायु शीतोष्ण प्रकार की पाई जाती है। शंकुधारी वनों में भी नीचे के क्षेत्रों में चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष तथा ऊंचाई पर शंकुवृक्ष अधिक पाए जाते हैं। लगभग 3600 मीटर ऊंचाई के बाद वृक्षों की संख्या कम होने लगती है यहां अल्पाइन जलवायु युक्त झाड़ियां दिखाई देने लगती है। इससे ऊपर बढ़ने पर झाड़ियों के स्थान पर घास, लाइकेन, मॉस आदि का बाहुल्य दिखाई पड़ता है। 4500 मीटर से अधिक ऊंचाई पर जाने पर केवल बर्फ से ढकी सतह दिखाई पड़ती है यहां किसी प्रकार की वनस्पति नहीं होती है।

इस प्रकार पश्चिम हिमालय पर पादपों के ऊंचाई के वितरण को उपर्युक्त चित्र द्वारा समझाया गया है (चित्र 1.8)।

अक्षांश व देशान्तर दोनों का परिवर्तन संसार भर की वनस्पति पर लगभग एक जैसा प्रभाव डालते हैं। विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ती दूरी के साथ पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वानस्पतिक क्षेत्र और पर्वतों पर बढ़ती ऊंचाई के साथ पाये जाने वाले वानस्पतिक क्षेत्र लगभग समान होते हैं (चित्र 1.9)।

(iii) वर्षण (Precipitation) – पादपों व जन्तुओं के लिए जल का सबसे बड़ा स्रोत वर्षण है। पृथ्वी तथा वायुमण्डल में जल का आदान–प्रदान दो क्रियाओं वर्षण (Precipitation) तथा वाष्पोत्सर्जन (Evapotranspiration) द्वारा होता है।

तालिका 1.3 : विभिन्न क्षेत्रों में तापमान के आधार पर पाई जाने वाली वनस्पति

तापक्रम क्षेत्र	भौगोलिक क्षेत्र	तापमान स्थिति	वनस्पति का प्रकार
उच्चतापी (Megatherms)	भूमध्यीय और उष्ण कटिबंधीय (Equatorial and Tropical)	पूरे वर्ष भर अधिक तापमान	उष्ण कटिबंधीय वृष्टि वन (Tropical rain forests)
मध्यतापी (Mesotherms)	उष्णकटिबंधीय एवं समशीतोष्ण क्षेत्र (Tropical & sub tropical)	अधिक तापमान के साथ सर्दी के मौसम में कम तापमान	उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन (Tropical deciduous forests)
निम्नतापी (Microtherms)	शीतोष्ण तथा उच्च ऊंचाई वाले (12,000 फीट तक) उष्ण कटिबंधीय एवं समशीतोष्ण क्षेत्र	न्यून तापमान	मिश्रित शंकुधारी वन (Mixed coniferous forests)
हेकिस्टोथर्म (Hekistotherms)	उत्तरी ध्रुवीय और अल्पाईन प्रदेश (उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्र में 16000 फीट से अधिक तथा शीतोष्ण क्षेत्र में 12000 फीट से अधिक की ऊंचाई)	अत्यन्त कम तापमान	अल्पाईन वनस्पति (Alpine vegetation)

वर्षण कई प्रकार से होता है यथा वर्षा, बर्फबारी, कोहरा आदि के रूप में। वर्षण के कई रूप पादपों के लिए लाभदायक तथा शेष कई रूप हानिकारक भी हो सकते हैं। लाभदायक रूपों में वर्षा (Rain) सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकार का वर्षण है। वर्षा की मात्रा किसी क्षेत्र की वनस्पति को बहुत अधिक प्रभावित करती है। साल भर में वर्षा के वितरण का प्रभाव भी क्षेत्र की वनस्पति पर पड़ता है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों (Tropical areas) में साल भर भारी वर्षा होती है अतः वहां सदाहरित प्रकार की वनस्पति (Evergreen type of vegetation) पाई जाती हैं। कुछ क्षेत्र में केवल सर्दी में ही भारी वर्षा होती है तथा गर्मियों में कम वर्षा होती है, ऐसे क्षेत्रों में दृढपर्णी वन (Sclerophyllous forests) बहुलता में पाए जाते हैं। इसी प्रकार उन क्षैत्रों में जहां गर्मियों में भारी वर्षा तथा सर्दियों में कम वर्षा होती है में चारागाह (Grassland) प्रकार की वनस्पति देखी जाती है एवं उन क्षेत्रों में जहां वर्ष भर कम वर्षा होती है मरुस्थलीय

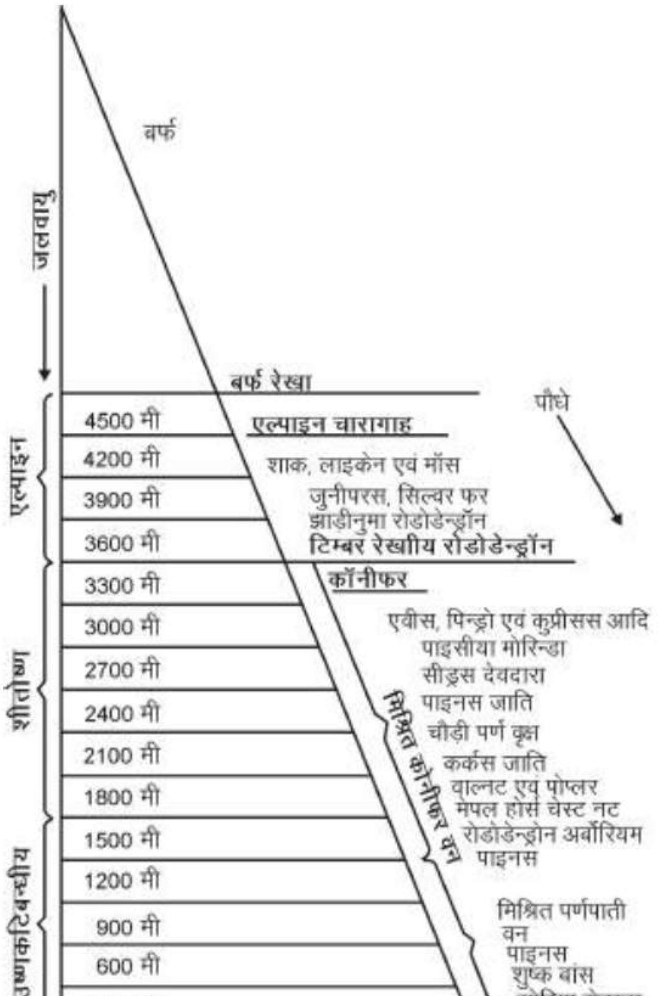

चित्र 1.8 : पश्चिम हिमालय पर ऊँचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण

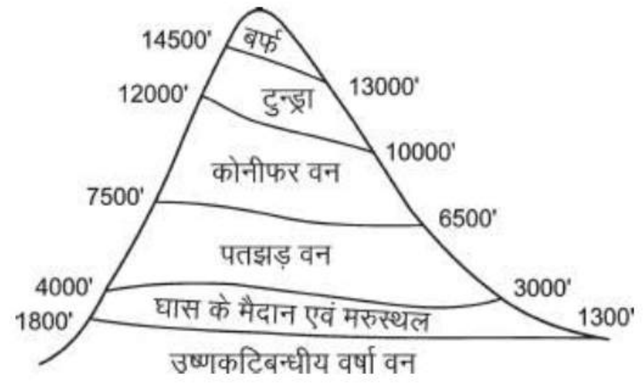

चित्र 1.9 : पर्वतों पर वनस्पति का तुंगीय क्षेत्र खण्डीकरण

वनस्पति (Xerophytic vegetation) पाई जाती हैं।

(iv) आर्द्रता (Humidity) – यह प्रकृति में पाए जाने वाले जल के विभिन्न रूपों में से एक हैं। वायुमण्डल में घुलित अदृश्य जल की मात्रा को आर्द्रता (Humidity) कहते हैं। वायुमण्डल की आर्द्रता को हाइग्रोमीटर या साइक्रोमीटर से नापा जाता है।

वायुमण्डल की आर्द्रता भी वनस्पति को बहुत अधिक प्रभावित करती है। कुछ पादप जैसे ऑर्किड, लाइकेन तथा ब्रायोफाइट्स आदि वायुमण्डलीय आर्द्रता का सीधा अवशोषण कर लेते हैं। जीवाणुओं तथा कवक के बीजाणुओं के अंकुरण के लिए भी आर्द्रता एक महत्वपूर्ण घटक है।

2. भूआकृतिक कारक (Topographic factors) – हमने पिछले बिन्दु में अध्ययन किया कि जलवायवीय कारक क्षेत्र विशेष की वनस्पति को प्रभावित करते हैं। लेकिन किसी क्षेत्र की जलवायु का निर्धारण भूआकृतिक कारकों के द्वारा होता है अतः परोक्ष रूप से वनस्पति का निर्धारण भी भूआकृतिक कारकों के द्वारा ही होता है। प्रकाश व ताप के प्रभावों में पश्चिम हिमालय के उदाहरण से वनस्पति वितरण पर ऊंचाई के प्रभावों का विवरण पहले दिया जा चुका है।

कुछ अन्य भूआकृतिक कारकों का विवरण यहां दिया जा रहा है–

1. पर्वत श्रृंखलाओं की ऊंचाई (Height of mountain chains)
2. पर्वत श्रृंखलाओं की दिशा (Direction of mountains)

पर्वत श्रृंखलाएं वायु के प्रवाह की दिशा का निर्धारण करती है तथा क्षेत्र की आर्द्रता को भी प्रभावित करती है। क्योंकि पर्वत श्रृंखलाओं की सही दिशा होने पर ही आस–पास के क्षेत्रों में वर्षा की पर्याप्त मात्रा देखी जाती है यही कारण है कि कुछ पर्वतों के आस–पास घनी वनस्पति पैदा होती है जबकि कुछ पर्वतों की चोटियां नग्न दिखाई पड़ती है।

पृथ्वी धरातल का ताप वहां तक आने वाली सूर्य की किरणों

के झुकाव कोण पर निर्भर करता है अतः इससे भी क्षेत्र की वनस्पति का वितरण व प्रकार निश्चित होता है (चित्र 1.10)।

हिमालय के पश्चिमी ढलान के अध्ययन से पता लगता है कि प्रथम 1200 मीटर तक की ऊंचाई पर मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed deciduous forest) मिलते हैं; 1200–3300 मीटर तक शंकुधारी वन (Coniferous forest) एवं 3600 मीटर पर वन लुप्त हो जाते हैं। 4200 मीटर की ऊंचाई पर स्थित अल्पाइन क्षेत्र के ठीक नीचे कुछ मॉस व लाइकेन आदि ही पाये जाते हैं। एक ही पर्वत पर वनस्पति का यह अनुक्षेत्र वर्गीकरण (Zonation) पादप जातियों के पारिस्थितिकीय आयाम (Ecological amplitude) में भिन्नता के फलस्वरूप होता है।

भूमि का ढाल (Slope) – ढाल, वनस्पति की प्रकृति को प्रभावित करने वाला दूसरा प्रमुख स्थलाकृतिक कारक है। ढाल पर्वतों का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। ढाल वर्षा के पश्चात् तीव्र जल प्रवाह (Swift runoff) का कारण बनता है। तीव्र जल प्रवाह से अधिकांश जल बह जाता है तथा मृदा में जल का रिसाव (Percolation) नहीं हो पाता है साथ ही मृदा की ऊपरी परत भी जल के साथ बह जाती है। भूमि अपरदन (Soil erosion) की भी समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा ह्यूमस भी एकत्रित नहीं हो पाता है। इस कारण ढाल पर वनस्पति का या तो पूर्णतः अभाव होता है या झाड़ियों वाली बहुत ही कम मरुद्भिदी वनस्पति (Xerophytic vegetation) ही पाई जाती है। पुनः पर्वतों के ढालों पर स्थाई भौम जल स्तर (Permanent water table) काफी गहराई पर होता है जिससे पादपों में जल का निरन्तर संभरण नहीं हो पाता है इसकी तुलना में घाटियों में, जहां जल काफी मात्रा में होता है तथा भौम जल स्तर भी मृदा सतह के समीप होता है, अत्यधिक वनस्पति होती है।

ढाल का खुलाव या अनावरण (Exposure of the slope)– यदि किसी पर्वतीय ढाल पर क्षीण प्रकाश तीव्रता तथा अति शुष्क वायु हो तो वहां वनस्पति बहुत ही कम एवं मरुद्भिदी होती है। उदाहरण के लिए हिमालय का उत्तरी ढलान जहां प्रकाश की किरणें तिरछी पड़ती हैं तथा वायु भी शुष्क होती है। इसकी तुलना में जहां ढाल सूर्य के प्रकार की ओर तथा वायु के मार्ग में होता है, वहां की वनस्पति सघन होती है, जैसे हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर जहां प्रकाश पर्याप्त मात्रा में होता है तथा वायु में भी पर्याप्त आर्द्रता होती है। दोनों ढलानों पर प्रकाश तीव्रता, वर्षा, बर्फ गिरने, आपेक्षिक आर्द्रता तथा पवन गति में अन्तर के कारण इन ढलानों के तापक्रम में भी अन्तर है। उन क्षेत्रों में जहां नमी क्रांतिक कारक (Critical factor) नहीं होती है वहां की वनस्पति, ढाल एवं ढाल के खुलेपन से प्रभावित नहीं होती है। अतः स्थलाकृतिक कारकों का प्रभाव अमुक क्षेत्र में उपस्थित नमी की मात्रा (Moisture content) से सम्बन्धित होता है।

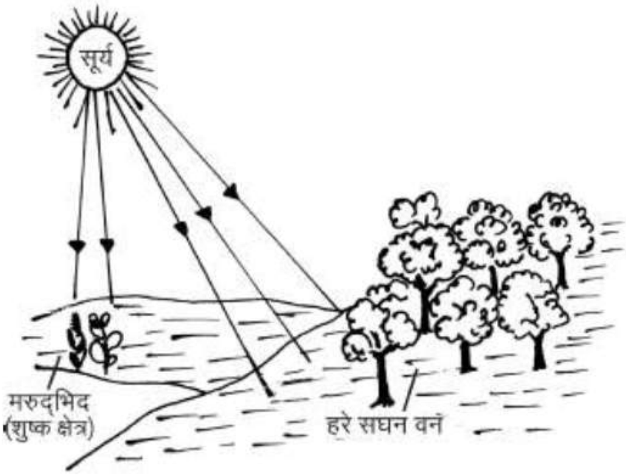

चित्र 1.10 : सौर किरणों के कोण एवं भू–सतह तापन से संबंध दर्शाता आरेख

पर्वत श्रृंखलाओं की दिशा (Direction of mountain chains) – किसी स्थान की जलवायु पर वहां उपस्थित पर्वत श्रृंखलाओं की दिशा का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ऊंचे पर्वत वायु के मार्ग को बदल देते हैं। यदि ऊंचे पर्वत मानसूनी हवाओं के मार्ग में पड़ते हैं तो ये हवाएं पर्वतों से टकराकर व संघनित होकर वर्षा कर देती है। अतः यहां की वनस्पति, समोद्भिद (Mesophyte) प्रकार की होती है जबकि पर्वत की दूसरी तरफ का भाग पूर्णतः शुष्क रह जाता है तथा वनस्पति मरुद्भिद प्रकार की होती है।

इसी कारण से पर्वत श्रृंखलाओं को जलवायु अवरोधक (Climatic barriers) भी कहते हैं। उदाहरण के लिए कुल्लू घाटी के दक्षिणी भागों में तो घनी वनस्पति पाई जाती है जबकि उत्तरी भागों (लाहुल घाटी) में केवल मरुद्भिद प्रकार की वनस्पति मिलती है। असम में गारो, खासी, जयन्तिया पर्वत मालाओं से, बंगाल की खाड़ी से उठने वाली मानसूनी हवाएं टकराकर यहां वर्षा कर देती हैं। इन पर्वत श्रृंखलाओं की निश्चित दिशा के कारण असम में संसार की सबसे अधिक वर्षा होती है जिसके कारण यहां की वनस्पति भी अधिक घनी है। राजस्थान में मानसूनी हवाओं के मार्ग में पड़ने वाली ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं का पूर्ण अभाव होने के कारण, अरब सागर से उठने वाली मानसूनी हवायें इस प्रान्त के ऊपर से गुजर जाती हैं, परिणामतः यह कम वर्षा का शुष्क क्षेत्र ही बना रहता है (चित्र 1.11)।

मृदीय कारक (Edaphic Factors)

पादप जीवन हेतु मृदा एक महत्त्वपूर्ण कारक है। जल, खनिज पोषकों तथा स्थिरीकरण (Anchorage) के लिए स्थलीय पादप पूरी तरह से मृदा पर निर्भर रहते हैं। कई मामलों में जलीय पौधे भी मृदा कारकों से उतने ही प्रभावित होते हैं जितने की स्थलीय पादप। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों (Microbes) का भी पादपों पर एक निश्चित प्रभाव होता है।

मृदा भूमि की सतह की सबसे ऊपरी परत है। इसका निर्माण चट्टानों के अपक्षय (Weathering) तथा पौधों एवं जन्तुओं के अपघटन से बनने वाले कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस (Humus) से मिलकर होता है। विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत मृदा का अध्ययन किया जाता है, 'मृदा विज्ञान' (Pedology) कहलाती है।

चट्टानों का अपक्षय भौतिक कारकों (जैसे – वायु, वर्षा, ताप, भू–फिसलन आदि), रासायनिक कारकों (जैसे – जल अपघटन, ऑक्सीकरण, अपचयन आदि) तथा जैविक कारकों (जैसे – लाइकेनों, जीवाणुओं, कवकों आदि) से होता है। उपुर्यक्त कारकों द्वारा मृदा का निर्माण निरन्तर होता रहता है। यह क्रिया अत्यन्त मन्द होती है। ह्यूमस (Humus) के निर्माण की क्रियायें भूमि की ऊपरी सतह पर अधिक तथा गहराई में कम होती है इससे मृदा की विभिन्न परतों के रंग, रूप एवं रचना में अन्तर पाया जाता है। अगर भूमि में एक सीधी खाई (Trench) खोदी जावे तो मृदा की एक–दूसरे पर जमी हुई विभिन्न स्तरें (Layers) दिखाई देती है। मृदा की इस परतीय रचना को 'मृदा परिच्छेदिका' (Soil profile) कहते हैं।

मृदा परिच्छेदिका (Soil profile) – मृदा परिच्छेदिका में क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर के स्तरों को A, B व C नाम दिये गये हैं (चित्र 1.12)। इन स्तरों को संस्तरण (Horizon) भी कहते हैं। संस्तरण A व B वास्तविक मृदा बनाते हैं। जनक शैल का अर्द्ध खण्डित भाग संस्तरण C कहलाता है।

A' संस्तरण ('A' Horizon)– यह सबसे ऊपरी स्तर होती है। इसको शीर्ष मृदा (Top soil) भी कहते हैं। इसमें उपस्थित कार्बनिक पदार्थ अपघटन (Disintegration) की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। इस संस्तरण की सबसे ऊपरी परत को 'A_{00}' परत कहते हैं। इसमें पत्तियों व शाखाओं के अक्षत (Intact) या आंशिक रूप से टूटे हुए टुकड़े होते हैं। इसके नीचे 'A_0' परत होती है इसमें आंशिक रूप से अपघटित (Partly decomposed) कार्बनिक पदार्थ होते हैं तथा अपघटित होने वाले अंग अपनी

चित्रा 1.11 : वर्षण तथा वनस्पति पर पर्वत शृंखलाओं की दिशाओं का प्रभाव

पहचान खो चुके होते हैं। 'A_0' के नीचे A_1 परत होती है जिसमें पूर्णतः अपघटित कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस होता है जो खनिज पदार्थों के साथ मिला हुआ रहता है। A_1 परत गहरे रंग की होती है। A_1 के नीचे A_2 व A_3 परतों में ह्यूमस की घटती हुई मात्रा होती है तथा ये A_1 से हल्के रंग की होती है।

B' संस्तरण ('B' Horizon) – यह 'A' संस्तरण से ठीक नीचे वाला संस्तरण होता है। इसे उप मृदा (Sub soil) भी कहते हैं। इस संस्तरण को भी परिपक्वता (Maturation) के घटते क्रम में B_1, B_2, B_3 परतों में उपविभाजित किया जाता है। B_1 परत, A_3 परत के ही समान होती है लेकिन इसमें कुछ कणीय रचनाएं भी उपस्थित हो सकती हैं। B_2 तथा B_3 में मृदा खण्ड (Soil blocks) होते हैं जो लोह (Iron) तथा एल्यूमिनियम (Aluminium) के समुच्चयन (Aggregation) से बनते हैं।

C' संस्तरण ('C' Horizon) – यह अपूर्ण अपक्षीण (Incomplete weathered) चट्टानों का बना होता है। इस संस्तरण के नीचे पृथ्वी की चट्टानें होती हैं।

प्रत्येक स्थान की मृदा परिच्छेदिका में उपरोक्त वर्णित सभी संस्तरण समान मोटाई व संरचना के नहीं होते हैं क्योंकि स्थान–स्थान पर जलवायु कारकों में असमानता पाई जाती है। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शीर्ष मृदा (Top soil) सर्वाधिक उर्वर (Fertile) होती है जो वनस्पति की वास्तविक उत्पत्ति व उचित वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है। शीर्ष मृदा में उपस्थिति विभिन्न कणों के आमाप (Size) तथा बनावट के आधार पर ही मृदा के भौतिक व रासायनिक गुण निर्भर करते हैं।

मृदा के घटक (Components of soil) – मृदा के चार मुख्य घटक होते हैं –

(i) खनिज पदार्थ (Mineral matter)

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic matter)

(iii) मृदा जल (Soil water)

(iv) मृदा वायु (Soil air)

उपजाऊ भूमि की मृदा में खनिज पदार्थ लगभग 40 प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ 10 प्रतिशत, मृदा जल 25 प्रतिशत एवं मृदा वायु 25 प्रतिशत होती है।

(i) खनिज पदार्थ (Mineral matter) – खनिज पदार्थ चट्टानों के अपक्षय द्वारा उपलब्ध होते हैं जो विभिन्न आमाप (Size) के कणों के रूप में मृदा में विद्यमान होते हैं। मृदा विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान ने विभिन्न आमाप के कणों को निम्नलिखित नाम दिये हैं:–

	कणों के नाम	कणों का आकार (व्यास मिमी. में)
(i)	मोटी बजरी (Coarse gravel)	5.0 से अधिक

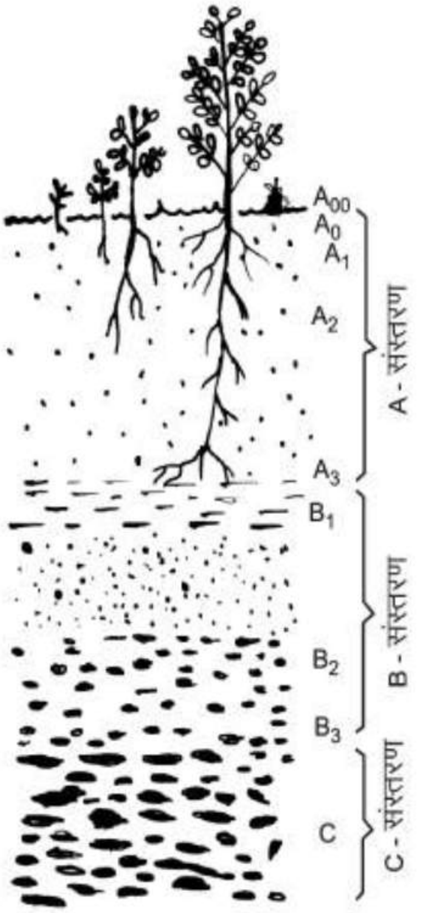

चित्र 1.12 : मृदा परिच्छेदिका

(ii)	बारीक बजरी (Fine gravel)	2.0 से 5.0 तक
(iii)	मोटी बालू (Coarse sand)	0.2 से 2.0 तक
(iv)	बारीक बालू (Fine sand)	0.02 से 0.2 तक
(v)	गाद (Silt)	0.002 से 0.02 तक
(vi)	चिकनी मृदा (Clay)	0.002 से कम

मृदा में इन कणों का अनुपात इसके विभिन्न गुणों जैसे खनिज पदार्थों की मात्रा, जल धारिता तथा पोषणता आदि का निर्धारण करता है।

मृदा का गठन (Soil texture) – मृदा का गठन उसमें उपस्थित विभिन्न आमाप (Different size) के खनिज कणों के आपेक्षिक अनुपात द्वारा निर्धारित होता है। कणों के आपेक्षिक अनुपात के आधार पर मृदा को छः प्रकारों में विभक्त किया गया है (सारणी अगले पृष्ठ पर) –

मृदा गठन का सम्बन्ध मृदा जल (Soil water), वातन (Aeration) व मूल वेधन (Root penetration) से है।

बलुई मिट्टी मोटे कणों (Coarse particles) से गठित होती है तथा हल्के गठन वाली (Light textured) कहलाती है। इसकी जल धारण क्षमता (Water holding capacity) व इसमें पोषकों (Nutrients) की मात्रा कम होती है जबकि रन्ध्र अवकाश (Pore space) अधिक होता है। चिकनी मिट्टी कोलाइडी कणों (Colloidal particles) की बनी होती है तथा भारी गठन (Heavy textured) वाली कहलाती है। इसकी जल धारिता अधिक तथा वातन (Aeration) कम होता है। चिकनी मृदाओं में जल आक्रान्ता (Water logging) होती है।

दोमट मिट्टी पादपों की वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त होती है क्योंकि इसमें बलुई (Sandy), गाद (Silty) व चिकनी (Clayey) मिट्टी लगभग समान मात्रा में होती है। इसलिए दोमट मिट्टी में वायु व जल का अच्छा आवागमन, सरल मूल वेधन (Easy root penetration) बलुई की उपस्थिति के कारण तथा उच्च जल धारिता एवं उर्वरता चिकनी मिट्टी की उपस्थिति के कारण होती है।

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) – मृदा के खनिज पदार्थों के साथ वर्ष दर वर्ष कार्बनिक पदार्थ जुड़ते रहते हैं। यद्यपि मृदा में कार्बनिक पदार्थों का प्रतिशत कम (10 प्रतिशत) ही होता है फिर भी किसी स्थान की वनस्पति एवं पादप वृद्धि पर ये व्यापक प्रभाव डालते हैं। मृदा में पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों के अपघटन के फलस्वरूप कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होता है। मृत भागों का अपघटन मृदा जीवों द्वारा किया जाता है।

भूमि की सतह पर सूखे मृत या टूटे पौधों के भागों ;पत्तियां, टहनियां, फल, फूल, मूल आदि एवं मृत जन्तुओं की एक परत बन जाती है। इस परत में मृत भाग अपघटन की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। इस परत का वह भाग जिसमें पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन नहीं हुआ हो अर्थात् सभी मृत भाग अपनी पहचान बनाये हुए हों, करकट या लीटर (Litter) कहलाता है। लीटर के नीचे का वह भाग जिसमें मृत भागों का आंशिक अपघटन हो गया हो लेकिन उन भागों को पहचाना जा सकता हो, 'डफ' (Duff) कहलाता है। इससे नीचे की परत में पौधों के मृत भागों का अपघटन अधिक होने के कारण इन भागों को नहीं पहचाना जा सकता, इस परत को ह्यूमस (Humus) परत कहते हैं। इस प्रकार पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों के सड़ने गलने से, ये काले और भूरे पदार्थ में बदल जाते हैं। इस काले भूरे पदार्थ को ही ह्यूमस (Humus) कहते हैं। ह्यूमस का और अधिक अपघटन होने से खनिज लवण मुक्त हो जाते हैं। पादपों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन होकर ह्यूमस में परिवर्तन के प्रक्रम को ह्यूमीफिकेशन (Humification) कहते हैं तथा ह्यूमस का खनिज लवणों में परिवर्तन खनिजीकरण कहलाता है।

	मृदा का प्रकार		प्रतिशत के आधर पर कणों की मात्रा
(i)	बलुई मिट्टी (Sandy soil)	(ii)	बालू कणिकाओं (Sand particles) की अधिकता।
(ii)	चिकनी मिट्टी (Clay soil)	(ii)	चिकनी मिट्टी के कणों (Clay particles) की अधिकता।
(iii)	दोमट मिट्टी (Loam soil)	(iii)	बालू, गाद व चिकनी मिट्टी के कण बराबर की प्रतिशतता में।
(iv)	बलुई दोमट मिट्टी (Sandy loam soil)	(iv)	दोमट मिट्टी जिसमें बालू की अधिकता हो।
(v)	गाद दोमट मिट्टी (Silt loam soil)	(v)	दोमट मिट्टी जिसमें गाद कणों की अधिकता हो।
(vi)	चिकनी दोमट मिट्टी (Clay loam soil)	(vi)	दोमट मिट्टी जिसमें चिकनी मिट्टी के कण अधिकता में हो।

मृदा में ह्यूमस पादपों के लिए अत्यन्त आवश्यक है –

1. ह्यूमस में खनिज लवणों की प्रचुरता होती है अतः यह पादप पोषकों का भण्डार हैं। इससे मृदा की उर्वरता में भी बढ़ोतरी होती है।
2. ह्यूमस मृदा की जल धारिता बढ़ा देता है। ह्यूमस के कारण मृदा की रन्ध्रता (Porosity) बढ़ जाती है जिससे जल का रिसाव (Percolation) व गैसों का आवागमन सुगम हो जाता है।
3. ह्यूमस मृदा जीवों के लिए भोजन का स्रोत है।
4. ह्यूमस मूलों के श्वसन हेतु ऑक्सीजन व जल का स्रोत है।

मृदा जीव (Soil organisms) – मृदा जीव मृदा का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। मृदा में वनस्पति जात (Flora) एवं जन्तु जात (Fauna) दोनों ही पाये जाते हैं जो मिलकर मृदा के जैविक तंत्र का निर्माण करते हैं। इन जीवों की क्रिया के लिए मृदा एक स्थिर वातावरण प्रदान करती है। मृदा में पाये जाने वाले वनस्पति जात एवं जन्तु जात के सदस्य निम्नलिखित हैं–

	मृदा वनस्पति जात (Soil flora)		मृदा जन्तु जात (Soil fauna)
1.	जीवाणु (Bacteria)	1.	निमेटोड्स (Nematodes)
2.	मृदा कवक (Soil fungi)	2.	केंचुए (Earthworms)
3.	शैवाल (Algae)	3.	प्रोटोजोआ व रोटीफर (Protozoa & Rotifer)
4.	मृदा एक्टीनोमाइसीट्स (Soil actinomycetes)	4.	दीमक
		5.	बिल बनाकर रहने वाले प्राणी

मृदा जीवों का महत्त्व (Importance of Soil Organisms)

(I) अनेक जीवाणु (Bacteria) तथा कवकें (Fungi) पादपों एवं जन्तुओं के मृत शरीर या उनके मृत अंगों में उपस्थित जटिल कार्बनिक पदार्थों का विघटन कर उन्हें सरल, यौगिकों में परिवर्तित कर पुनः जीवों को उपलब्ध कराते हैं तथा मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं। इस प्रकार पोषकों का चक्रीकरण सम्भव हो पाता है।

(ii) कुछ जीवाणु जैसे एजोटोबैक्टर (*Azotobacter*), क्लॉस्ट्रिडियम (*Clostridium*) तथा राइजोबियम (*Rhizobium*) एवं नील हरित शैवाल, वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं।

(iii) कुछ बड़े जीव जैसे केंचुएं (Earthworms), चूहे (Rates) आदि भूमि खोदकर बिल (Tunnel) बनाते रहते हैं जिससे नीचे की मिट्टी ऊपर तथा ऊपर की नीचे होने से मृदा को एकरूपता प्रदान करते हैं। मृदा में बिल बनाने से मृदा की अन्दर की परतों में गैसों का आवागमन सुगम हो जाता है।

(iv) जीवाणुओं एवं कवकों द्वारा वृद्धिकारी पदार्थों (Growth stimulating substances) का स्त्राव किया जाता है जो पौधों की वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं। कभी–कभी मृदा जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थों की अपूर्ण सड़ान के कारण, विषैले पदार्थों का उत्पादन होता है जो पौधों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

(v) मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव विशेषकर जीवाणु व कवक पौधों एवं जन्तुओं के मृत भागों का अपघटन कर मृदा में ह्यूमस के रूप में मिश्रित कर देते हैं। इस प्रकार ये जीव प्राकृतिक अपमार्जकों (Natural scavangers) का कार्य करते हैं।

;अपद्ध कुछ शैवाल तथा जीवाणु श्लेष्मा (Mucilage) पदार्थ स्त्रावित करते हैं। इस श्लेष्मा के कारण मृदा के विभिन्न कण आपस में बंधे रहते हैं।

(iii) मृदा जल (Soil water) – पादप समुदायों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं को उत्पन्न करने में मृदा जल का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मृदा में जल प्रमुख रूप से वर्षा से आता है। मृदा के कणों के बीच कुछ रिक्त स्थान होते हैं जिन्हें रन्ध्र अवकाश कहते हैं। वर्षा का कुछ जल इन अवकाशों में भरा रहता है जिसे केशिका जल (Capillary water) कहते हैं। विभिन्न प्रकार के मृदा जल में से केवल केशिका जल ही पौधों को उपलब्ध हो पाता है। केशिका जल की मात्रा मृदा के कणों के आकार पर निर्भर करती है। जैसे–जैसे मृदा कण छोटे होते जाते हैं मृदा की जल धारिता अधिक होती जाती है।

मृदा में जल की अधिकता पौधों के लिए हानिकारक होती है। जलाक्रान्ता (Water logging) के कारण मृदा में क्षीणवातन (Poor aeration) होता है जिससे पौधों द्वारा जल का बहुत ही कम अवशोषण सम्भव हो पाता है। मृदा में जल की कमी के कारण वनस्पति की क्षीण वृद्धि (Poor growth) होती है।

मृदा वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर पाये जाने वाले जल की कुल मात्रा को होलार्ड या सम्पूर्ण जल (Halard), पौधों को उपलब्ध होने वाले जल को क्रेसार्ड या प्राप्य मृदा जल (Chresard) तथा पौधों को उपलब्ध नहीं होने वाले जल को इकार्ड या अप्राप्य जल (Echard) कहा है।

वर्षा के उपरान्त गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से जल के नीचे चले जाने के पश्चात् मृदा में बचे हुए जल की प्रतिशत मात्रा को क्षेत्र क्षमता कहते हैं। अतः केशिका जल, रसायनतः संयुक्त जल (Chemically combined water), आर्द्रता जल तथा जल वाष्प की कुल मात्रा संयुक्त रूप से क्षेत्र क्षमता का गठन करते हैं (चित्र 1.13)।

क्षेत्र क्षमता = रासायनिक बन्धित जल+आर्द्रता जल + केशिका जल + जल वाष्प

Field capacity = Capillary water + Hygroscopic water + Chemically combined water + water vapours)

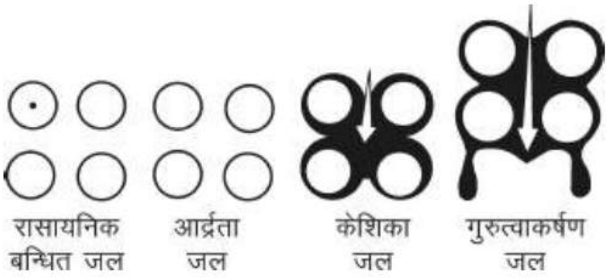

चित्रा 1.13 : मृदा में विभिन्न प्रकार के जल

(vi) मृदा वायु (Soil air) – मूलों के श्वसन में O_2 की आवश्यकता होती है। श्वसन से प्राप्त ऊर्जा, मूल वृद्धि एवं नये मूल रोम बनने के लिए आवश्यक होती है जिससे जल अवशोषण निरन्तर बना रहे। क्षीण वातन वाली मृदा में मूल के आस–पास CO_2 एकत्रित हो जाती है जो पादप मूलों के लिए विषैली होती है। O_2 की कमी तथा CO_2 की अधिकता के कारण कुछ विषैले पदार्थ जैसे H_2S, फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, ऑक्सेलिक अम्ल आदि का निर्माण हो जाता है जौ पौधों की वृद्धि पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

मृदा कणों के बीच उपस्थित अन्तराल जिन्हें रन्ध्र स्थान (Pore space) कहते हैं, जल एवं वायु से भरे रहते हैं। रन्ध्र स्थानों में पाई जाने वाली गैसें ही मृदा वायुमण्डल का निर्माण करती है। मृदा वायु पौधों के लिए निम्नलिखित प्रकार से महत्त्वपूर्ण है –

(I) पादपों के भूमिगत भागों तथा मृदा जीवों की श्वसन क्रिया के लिए आवश्यक है।

(ii) ह्यूमस निर्माण एवं बीजों के अंकुरण के लिए मृदा वायु अत्यावश्यक है।

(iii) सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन क्रिया O_2 पर निर्भर करती है।

(iv) मूल वृद्धि एवं नये मूल रोम बनने के लिए मृदा में वातन आवश्यक है।

(v) मृदा का वातन क्षीण (Poor aeration) होने के कारण पौधों में आकारिकीय, कार्यिकीय एवं शारीरिय गुणों में परिवर्तन आ जाते हैं जैसे न्यूमेटोफोर (Pneumatophore), बट्रेसेस या पुश्ता मूल (Buttress root) आदि का पाया जाना।

मृदा तापमान (Soil temperature) – मृदा तापक्रम मृदा में होने वाले भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रमों को प्रभावित करने के अतिरिक्त (i) मूलों द्वारा जल एवं लवणों के अवशोषण की दर (ii) बीजों के अंकुरण एवं (iii) पादप के भूमिगत भागों की वृद्धि, को अत्यधिक सीमा तक प्रभावित करता है। पादप में उच्चतम उपापचयी क्रियाएं एवं मूलों द्वारा जल का उच्चतम अवशोषण सामान्यतः 20°C से 30°C के मध्य होता है। 20°C से निम्न तापमान जल की अवशोषण दर को काफी कम कर देता है। हिमांक पर अवशोषण दर नगण्य होती है। अतः शीत मृदाओं (Cold soils) में क्षीण वनस्पति (Poor vegetation) होती है तथा पौधे बौने (Dwarf) बने रहते हैं। उष्ण मृदाओं (Warm soils) की वनस्पति में वृक्षों की अधिकता होती है। मृदा तापक्रम का मापन मृदा तापमापी (Soil thermometer) द्वारा किया जाता है।

मृदा तापक्रम निम्न कारकों पर निर्भर करता है –

(i) मृदा सतह का रंग एवं गठन

(ii) मृदा जल की मात्रा एवं मृदा रन्ध्रता

(iii) वनस्पति का आवरण

(iv) ढाल की दिशा आदि।

मृदा क्रियायें (Soil reactions) – रासायनिक दृष्टि से मृदा उदासीन (Neutral), अम्लीय (Acidic) अथवा क्षारीय (Alkaline) हो सकती है। अम्लीयता या क्षारीयता, मृदा में उपस्थित H व OH आयनों की सान्द्रता पर निर्भर करती है। यदि किसी मृदा में दोनों आयन्स (H व OH) की मात्रा बराबर हो तो वह उदासीन कहलाती है। इस मृदा का pH=7 होता है। मृदा में

H अधिक हो तो pH=7 से कम अर्थात् अम्लीय तथा OH की मात्रा बढ़ने पर pH=7 से अधिक अर्थात् क्षारीय होती है।

मृदा की अधिक अम्लीयता या क्षारीयता पौधों के लिए हानिकारक हो सकती है। pH का पौधों की जीवन क्षमता (Viability) तथा पोषकों के सम्भरण (Nutrient supply) पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। मूल कोशिकाओं का जीवद्रव्य pH=3 के नीचे तथा pH=9 के ऊपर अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो जाता है। सूक्ष्मजीव अम्लीयता के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। जीवाणु क्षारीय माध्यम में रहते हैं तथा pH=6 से नीचे उनमें क्षति होती हैं। संवहनी पादप pH 3.5 से pH 8.5 के बीच स्वस्थ रह सकते हैं। कुछ पादप अम्ल सहिष्णु (Acid tolerant) होते हैं। अधिक क्षारीय मृदा ऊसर (Barren) होती है तथा रेह (Reh) कहलाती है।

उदासीन या आंशिक अम्लीय मृदा अधिकांश पौधों के लिए उपयुक्त होती है। कृषिजन्य पादपों (Cultivated plants) की कुछ जातियां अम्लीय मृदा में उग सकती हैं जबकि शिम्बी पादपों (Leguminous plants) की ऐसी मृदा में अल्प वृद्धि (Poor growth) होती है।

जैविक कारक (Biotic Factors)

प्रकृति में किसी भी जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। सभी पादप एवं जन्तु साथ–साथ रहते हैं तथा एक–दूसरे को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इन सजीवों को समस्त जैविक क्रियाओं जैसे वृद्धि, पोषण, प्रजनन, परागण एवं बीज विकिरण के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। उपरोक्त सभी प्रक्रमों को पूर्ण करने के लिए जीवों में अन्योन्य क्रियाएं होती रहती हैं। अन्योन्य क्रियाएं एक ही जाति के पादपों के मध्य अथवा विभिन्न जातियों के मध्य या पौधों एवं जन्तुओं याने विभिन्न वंशों के मध्य होती रहती है। इन्हें क्रमशः अन्तराजातीय (Intraspecific), अन्तरजातीय (Interspecific) व अन्तरवंशीय (Intergeneric) अन्योन्यक्रियाएं कहते हैं। जीवों में होने वाली समस्त अन्योन्य क्रियाओं को जैविक कारकों के अन्तर्गत रखा गया है। इन सब के साथ–साथ मानव भी एक महत्त्वपूर्ण जैविक कारक है।

प्रकृति में समस्त जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं तथा जैविक सम्बन्ध (Biotic relations) बनाये रखते हैं। जीवों के बीच ये सम्बन्ध दोनों भागीदारों के लिए लाभदायक, हानिकारक या एक के लिए लाभदायक तथा दूसरे के लिए हानिकारक हो सकते हैं। डी बेरी (De Bary, 1879) ने जीवों के सहसम्बन्धों को दर्शाने के प्रयोजन से 'सहजीवन' (Symbiosis) शब्द का गठन किया जिसमें एक या दोनों सहभागियों (Partners) को लाभ होता है तथा हानि किसी को भी नहीं होती है। लेकिन क्लार्क (Clark, 1954) ने सहजीवन शब्द का प्रयोग तभी उचित बताया है जब दोनों सहभागी जीवों को लाभ पहुंचे तथा किसी को भी हानि न हो। यदि एक जीव को हानि होती है तो उस अवस्था में 'विरोध' (Antagonism) शब्द का उपयोग सुझाया गया है।

जैविक अन्योन्यक्रियाऐं (Biotic Interactions)

ओडम (1971) ने सहजीवन सम्बन्धी को, धनात्मक एवं ऋणात्मक अन्योन्य क्रियाओं (Positive and negative interactions) में विभक्त किया है।

I. धनात्मक अन्योन्यक्रियाएं (Positive Interactions)

इन क्रियाओं के अन्तर्गत समष्टियों (Populations) के आपसी सम्बन्धों द्वारा दोनों सहभागियों को सहायता पहुंचती है फलस्वरूप एक या दोनों जातियां लाभान्वित होती हैं। इन लाभदायक अन्योन्यक्रियाओं की श्रेणी में निम्नलिखित सम्बन्ध आते हैं –

1. सहोपकारिता (Mutualism)
2. प्राक्सहयोगिता (Proto-cooperation)
3. सहभोजिता (Commensalism)

1. सहोपकारिता (Mutualism) – जब दो विभिन्न प्रकार के जीवों के परस्पर साहचर्य (Association) में रहने से दोनों को लाभ पहुंचता हो। पुनः दोनों जीवों को जीवित रहने के लिए दोनों का साथ रहना अर्थात् साहचर्य भी आवश्यक हो तो इस सम्बन्ध को सहोपकारिता (Mutualism) कहते हैं। यह सम्बन्ध दो पादपों के बीच, दो जन्तुओं के बीच अथवा जन्तुओं व पादपों के बीच हो सकते हैं। इसके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(अ) शैक (Lichens) – कवक एवं शैवाल दोनों मिलकर एक जटिल जीव का निर्माण करते हैं जिसे शैक या लाइकेन कहते हैं। लाइकेन का थैलस मुख्यतः कवक का होता है तथा शैवाल घटक इसमें लिपटा रहता है। ये दोनों घटक लाइकेन में साथ–साथ रहकर एक–दूसरे को लाभान्वित करते हैं। इसमें शैवाल सहभागी प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं जिसका उपयोग कवक भी करती है। इसके प्रतिफल में कवक से शैवाल को जल, खनिज लवण तथा सुरक्षा प्राप्त होती है।

(ब) नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) – लेग्युमिनोसी कुल के शाकीय व पेपिलियोनेसी उपकुल के अधिकांश पौधों में ग्रंथिल मूलें (Nodulated roots) होती हैं। ये ग्रन्थियां राइजोबियम जीवाणु (*Rhizobium* bacteria) द्वारा उत्पन्न होती है। ग्रन्थिल मूलों में निवास कर रहे जीवाणुओं को पौधे से भोजन तथा रहने के लिए आश्रय प्राप्त होता है। जीवाणु भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधे को उपलब्ध कराते रहते हैं जिसकी सहायता से पादप में प्रोटीनों का संश्लेषण सुगम होता है। इसी प्रकार साइकस की प्रावलाभ मूल

(Coralloid root), एजोला (*Azolla*) तथा ब्रायोफाइट के एन्थोसिरोस में नील हरित शैवाल वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का कार्य करती है एवं पादप शरीर में सुरक्षित रहती हैं।

(स) कवकमूल साहचर्य (Mycorrhizal associations)– कतिपय उच्च श्रेणी के पादपों की मूलों एवं कवक के साहचर्य को कवकमूल (Mycorrhiza) कहते हैं।

कवक, मूल की बाह्य सतह पर ही लिपटी हो सकती है जिसे बहिर्पोषी (Ectotrophic) कहते हैं जैसे पाइनस, ओक आदि। कुछ कवकमूलों में कवक, मूल के अन्दर कोशिकाओं में भी हो सकती है जिसे परान्तःपोषित (Endotrophic) कवकमूल कहते हैं, जैसे ऑर्किडेसी (Orchidacae), एरिकेसी (Ericaceae) आदि। इन दोनों प्रकार की कवकमूलों में कवक भाग जल एवं खनिज लवणों का अवशोषण कर वृक्षों को उपलब्ध कराती है तथा स्वयं मूलों से भोजन प्राप्त करती है। कुछ तत्त्वों जैसे फास्फोरस को पौधे सीधे मृदा से ग्रहण नहीं कर पाते हैं। कवक विशेष क्रिया द्वारा इनका अवशोषण कर पौधों को उपलब्ध कराती है। सामान्यतः देखा गया है कि जिन पौधों में कवकमूल होती है उनकी मूलों में मूल रोम नहीं पाये जाते। मूल रोमों का कार्य कवक तन्तुओं द्वारा किया जाता है (चित्र 1.14)।

लकड़ी को खाने वाले दीमक सहोपकारिता का एक अच्छा उदाहरण है। दीमक की आंत्र में ट्राइकोनिम्फा (*Trichonympha*) नाम प्रोटोजोआ सेल्यूलोज का पाचन करता है तथा दीमक से इसे आश्रय एवं भोजन प्राप्त होता है।

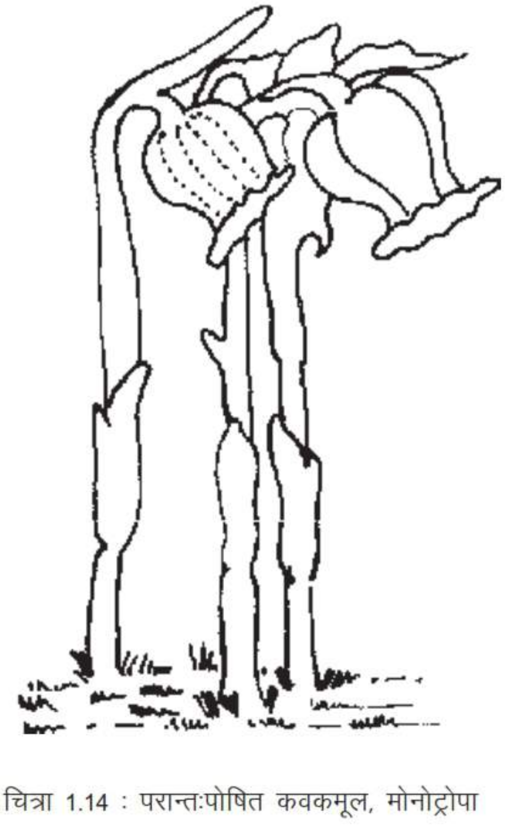

चित्रा 1.14 : परान्तःपोषित कवकमूल, मोनोट्रोपा

पौधों में परागण (Pollination) तथा फल एवं बीजों का प्रकीर्णन भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं। युक्का (*Yucca*) में परागण क्रिया एक विशिष्ट शलभ (Moth) प्रोनूबा युक्कासेला (*Pronuba yuccasella*) द्वारा सम्पन्न होती है। यह शलभ अपना जीवन–चक्र युक्का पर पूर्ण करता है। अतः दोनों का जीवन–चक्र पूर्ण करने में एक–दूसरे का सहयोग प्राप्त होता है।

2. प्राक्सहयोगिता (Proto-cooperation) – इस प्रकार के सम्बन्ध में साथ रहने वाली दोनों समष्टियों (Populations) को लाभ होता है लेकिन दोनों के जीवित रहने के लिए यह सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है। समुद्री एनीमोन, साधु केंकड़े (Hermit crab) के बीच प्राक् सहयोगिता पाई जाती है। समुद्री एनीमोन, साधु केंकड़े के खोल पर चिपका रहता है। हरमिट क्रेब (साधु केंकड़ा) इसको भोजन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है तथा समुद्री एनीमोन अपनी दंश कोशिकाओं (Nematocysts) से क्रेब को बाहरी खतरों से सुरक्षा प्रदान करता है। दोनों जीव स्वतन्त्र रूप से भी जीवनयापन करने में सक्षम हैं अतः साहचर्य दोनों के जीवित रहने के लिए अनिवार्य नहीं है।

3. सहभोजिता (Commensalism) – जब दो साथ रहने वाली भिन्न जातियों के जीवों में से एक जाति के जीव को लाभ होता हो लेकिन हानि किसी को भी नहीं होती हो तो इस प्रकार के सम्बन्ध को सहभोजिता कहते हैं। सहभोजिता के मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(अ) अधिपादप (Epiphytes) – ये पौधे स्वःपोषी तथा छोटे होते हैं। सघन वनों में प्रकाश की अत्यधिक समस्या होती है। अधिपादप प्रकाश व आर्द्रता प्राप्त करने के लिए दूसरे वृक्षों के तनों, शाखाओं या पर्णों पर चिपके रहते हैं। इनमें दो प्रकार की मूलें होती हैं – अनुलग्न मूलें (Clinging roots) जो अधिपादप को दूसरे वृक्ष के तने या शाखाओं पर चिपकाने का कार्य करती हैं। निलम्बी मूलें (Hanging roots) जो आर्द्रताग्राही गुंठिका (Velamen) या वेलेमिन नामक मृत स्पंजी ऊतक के आवरण युक्त होती है जिसकी सहायता से ये मूलें वायुमण्डल की नमी, ओस, वर्षा आदि के जल को अवशोषित करती है। प्रकाश की उपस्थिति में ये पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। अतः अधिपादप जिस वृक्ष पर चिपके रहते हैं उस वृक्ष को इनसे किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है। उदाहरण– वैन्डा (*Vanda*) तथा अन्य ऑर्किड्स।

(ब) कठलताएं (Lianas) – ये काष्ठीय आरोही पादप हैं जो अपनी जड़ों द्वारा स्थिर रहते हैं लेकिन अन्य वृक्षों की सहायता से इनके शीर्ष भागों पर फैले रहते हैं। नम उष्ण कटिबन्धीय वनों

(Moist tropical forest) में ऊंचे वृक्षों की सघनता के कारण नीचे के स्तरों की वनस्पति को पर्याप्त प्रकाश प्राप्त नहीं हो पाता है। इसी कारण कठलताएं प्रकाश ग्रहण करने के उद्देश्य से दूसरे पादपों के सहारे ऊंचाई पर पहुंच जाती हैं जहां पत्तियों को फैलाकर उपयुक्त प्रकाश ग्रहण कर भोजन निर्माण करते हैं। यहां पर उन पौधों को जिनसे ये कठलताएं सहारा (Support) प्राप्त करती हैं, कोई हानि नहीं होती है। कठलताओं के मुख्य उदाहरण हैं– बोहिनिया (*Bauhinia*) की कुछ जातियां, टीनोस्पोरा (*Tinospora*), बॉगेनविलिया (*Bougainvillea*) आदि। कठलताएं मूलों की सहायता से भूमि से सम्बन्ध बनाये रखती हैं जबकि अधिपादपों का मूलों द्वारा भूमि से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है।

II. ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएं (Negative Interactions)

जब दो जीवों के सम्बन्ध इस प्रकार के हों कि उनके जीवनकाल में एक या दोनों को हानि पहुंचती हो, ऐसे सम्बन्धों को ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाएं या विरोध (Antagonism) कहते हैं। इस प्रकार के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया गया है–

(1) शोषण (Exploitation)

(2) प्रतिजीविता (Antibiosis)

(3) स्पर्धा (Competition)

(1) शोषण (Exploitation) – इसमें एक सहभागी अपने स्वयं के लाभ हेतु दूसरे सहभागी का शोषण करता है जो मुख्यतः भोजन व आश्रय के रूप में होता है। भोजन के कारण होने वाले शोषण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(अ) परजीविता (Parasitism),

(ब) परभक्षिता (Predation)।

(अ) परजीविता (Parasitism) – वे जीव जो अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते वरन् इसके लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं। परजीवी (Parasite) जिस जीव से भोजन लेता है वह परपोषी (Host) कहलाता है। परजीवी आश्रयदाता या परपोषी से चूपकांगों (Haustoria) की सहायता से भोजन प्राप्त करते हैं। परजीवी अन्तः परजीवी (Endoparasite) या बाह्य परजीवी (Ectoparasite) हो सकते हैं। कवक तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के अतिरिक्त कुछ पुष्पीय पौधे भी परजीवी होते हैं। ये पौधे दूसरे पौधों की मूलों पर मूल परजीवी (Root parasite) या स्तम्भ पर स्तम्भ परजीवी (Stem parasite) होते हैं। ये आंशिक (Partial) या पूर्ण (Total) परजीवी हो सकते हैं। परजीवी पुष्पीय पौधों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

(i) पूर्ण स्तम्भ परजीवी (Total stem parasite) – जैसे अमरबेल (*Cuscuta*), जो बेर (*Ziziphus*), बबूल (*Acacia*) आदि

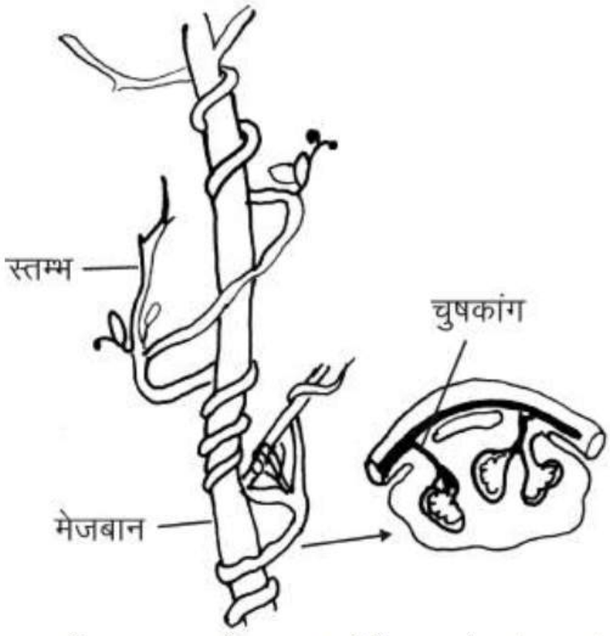

चित्र 1.15 : पूर्ण स्तम्भ परजीवी–अमर बेल (कुस्कुटा)

के स्तम्भ पर पाया जाता है। यह परजीवी मूल एवं पत्तियों रहित होता है। अतः पूर्ण रूप से परपोषी पर जीवित रहता है। कसाईथा (*Cassytha*) नीम पर पूर्ण स्तम्भ परजीवी है (चित्र 1.15)।

(ii) आंशिक स्तम्भ परजीवी (Partial stem parasite)– जैसे लोरेन्थस लोंगीफ्लोरस (*Loranthus longiflorus*), जो बोसविलीया (*Boswellia*) के स्तम्भ पर, डेंड्रोफथी (*Dendrophthae*) आम के स्तम्भ पर तथा विस्कम (*Viscum*) सेब, पाइनस आदि के स्तम्भ पर। ये परजीवी आंशिक रूप से परपोषी पर निर्भर करती हैं।

(iii) पूर्ण मूल परजीवी (Total root parasite) – जैसे स्ट्राइगा (*Striga*) घासों व लेपिडागेथिस (*Lepidagathes*) की मूल पर, आरोबैंकी (*Orobanche*) सोलेनेसी व क्रूसीफेरी कुल के पौधों की मूलों पर, बैलेनोफोरा (*Balanophora*) अनेक उष्ण कटिबन्धीय वनों के वृक्षों की मूलों पर पाये जाते हैं (चित्र 1.16)।

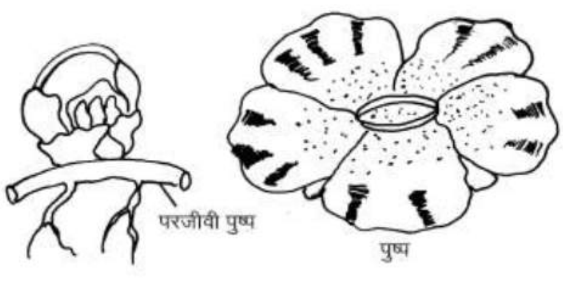

चित्र 1.16 : पूर्ण मूल परजीवी (रैफ्लिशिया)

(iv) आंशिक मूल परजीवी (Partial root parasite) – जैसे चन्दन (*Santalum album*) शीशम, सिरिस की मूलों पर।

(ब) परभक्षिता (Predation) – परभक्षिता में परभक्षी (दूसरे जीवों को खाने वाला) अन्य जाति के प्राणियों को पकड़कर, मारकर भोजन के रूप में काम लेता है। जो परभक्षी जन्तुओं को खाते हैं उन्हें मांसाहारी (Carnivores) तथा जो पौधों को खाते हैं उन्हें शाकाहारी (Herbivores) परभक्षी कहते हैं। अधिकांश परभक्षी जन्तु ही होते हैं। स्वयं मनुष्य एक परभक्षी है। कतिपय पादप भी परभक्षी होते हैं। कुछ विशेष प्रकार के पौधे कीटों को पकड़कर भोजन के रूप में उपयोग करते हैं इन्हें कीटभक्षी पादप (Insectivorous plants) कहते हैं। ये पादप नाइट्रोजन की कमी वाली मृदा में उगते हैं। नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए ये विशेष अंगों की सहायता से कीटों को पकड़कर खाते हैं। कीटभक्षी पादपों के मुख्य उदाहरण हैं– नेपेन्थिस, डायोनिया, ड्रोसेरा, पिंगुईकुला, अल्ड्रावैन्डा, यूट्रीकुलेरिया आदि(चित्र 1.17)।

(2) प्रतिजीविता (Antibiosis) – दो जीवों या जीव समूहों के इस प्रकार के परस्पर सम्बन्ध जिससे दोनों को ही लाभ नहीं होता है। इसमें एक जीव द्वारा कुछ रासायनिक पदार्थों के स्त्रवण (Secretion) के कारण दूसरे जीव की वृद्धि पूर्ण या आंशिक रूप से अवरूद्ध हो जाती है या उसकी मृत्यु हो जाती है। कवक, जीवाणु तथा एक्टिनोमाइसीट्स इस प्रकार के पदार्थों का स्त्रवण (Secretion) करते हैं। अनेक नील हरित शैवाल अतिवृद्धि कर जल की सतह पर छा जाती है तथा हाइड्रोक्सील अमीन जैसे जहरीले पदार्थों का स्त्रवण करती हैं जिससे मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों की मृत्यु हो जाती है।

(3) स्पर्धा (Competition) – प्रायः समान आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीवों में स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है। यह स्पर्धा निकट सम्बन्धियों अर्थात् समान जाति के जीवों में अधिक होती है। गाउसे (Gause, 1935) के अनुसार दो जातियों की समान आवश्यकता में स्पर्धा के कारण उनमें से एक समाप्त हो जाती है। इसे प्रतिस्पर्धा के निष्कासन का सिद्धान्त कहते हैं।

पौधों में स्पर्धा पर्यावरणीय कारकों (खनिज, प्रकाश, जल, लवण, CO_2, O_2 आदि) की अपर्याप्त उपलब्धता के कारण उत्पन्न होती है। एक ही जाति के पौधों के बीच होने वाली स्पर्धा को स्वजातीय या अन्तराजातीय स्पर्धा (Intraspecific competition) तथा दो भिन्न जातियों के पादपों के बीच होने वाली स्पर्धा को अन्तरजातीय स्पर्धा (Interspecific) कहते हैं। कुछ पौधे विशेष प्रकार के रसायनों का स्त्रवण करते हैं जो दूसरे पौधों के लिए हानिकारक होते हैं। इसे एलीलोपेथी (Allelopathy) कहते हैं। ऐरिस्टिडा ओलिकेन्था (घास) फीनोल जैसे– पदार्थों का स्त्राव करती है जिससे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं एवं शैवालों की वृद्धि रूक जाती है। इसी प्रकार लेन्टाना केमेरा (*Lantana camara*) तथा पार्थिनियम हिस्टेरोफोरस (*Parthenium hysterophorus*) भी कुछ विशेष रसायनों का स्त्रवण करता है जिनके कारण, इन पौधों के आस–पास अन्य शाकीय पौधों की वृद्धि रूक जाती है या उनकी मृत्यु हो जाती है।

वनस्पति पर जन्तुओं का प्रभाव

(Effect of Animals on Vegetation)

पादपों के बीच पारस्परिक क्रियाओं के अतिरिक्त पादपों एवं जन्तुओं के मध्य भी पारस्परिक क्रियाएं होती हैं। सभी जन्तु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना भोजन वनस्पति से प्राप्त करते हैं तथा उनकी इन क्रियाओं से पौधों की वृद्धि एवं विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। ऊंट, भेड़, बकरी, गाय, भैंस, चूहे, खरगोश पौधों की पत्तियों को खाते हैं जिससे पौधों का प्रकाश संश्लेषी क्षेत्र बहुत कम हो जाता है। जन्तुओं के निरन्तर विचरण से छोटे शाकीय पौधे रौंद दिये जाते हैं तथा उनके पैरों से वहां की भूमि भी कठोर हो जाती है जिससे मृदा में वायु संचरण कम हो जाता है। पशुओं के निरन्तर दबाव से भूमि पर वनस्पति का आवरण नहीं बन पाता तथा मृदा अपरदन (Soil erosion), भूमि का कटाव, बाढ़ आना आदि होने लगते हैं। राजस्थान के दक्षिणी पश्चिमी भाग में भेड़, बकरी एवं ऊंट जैसे पालतू पशु बहुतायत में होते हैं। इस भाग के मरुस्थलीकरण में इन पशुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी कारण यह भाग पूर्ण रेगिस्तान है। चरने का प्रभाव बहुवर्षी पौधों की तुलना में एकवर्षी पौधों पर अधिक पड़ता है।

वनस्पति पर मानव का प्रभाव

(Effect of Man on Vegetation)

मानव तथा वनस्पति का सम्बन्ध अति प्राचीन है। मानव की आधारभूत आवश्यकताएं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान वनस्पति से पूर्ण होती है। आदिकाल में मानव ये आवश्यकताएं प्रकृति के साथ सन्तुलन बनाये रखते हुए पूरी कर लेता था लेकिन जैसे–जैसे मानव का बौद्धिक विकास हुआ तथा उसके द्वारा औद्योगीकरण, शहरीकरण, जंगलों का काटना (Deforestation) जैसी क्रियाओं के कारण प्रकृति का प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ता ही चला गया है। वर्तमान में मानव निजी हितों के लिए वनों को साफ कर कृषि तथा

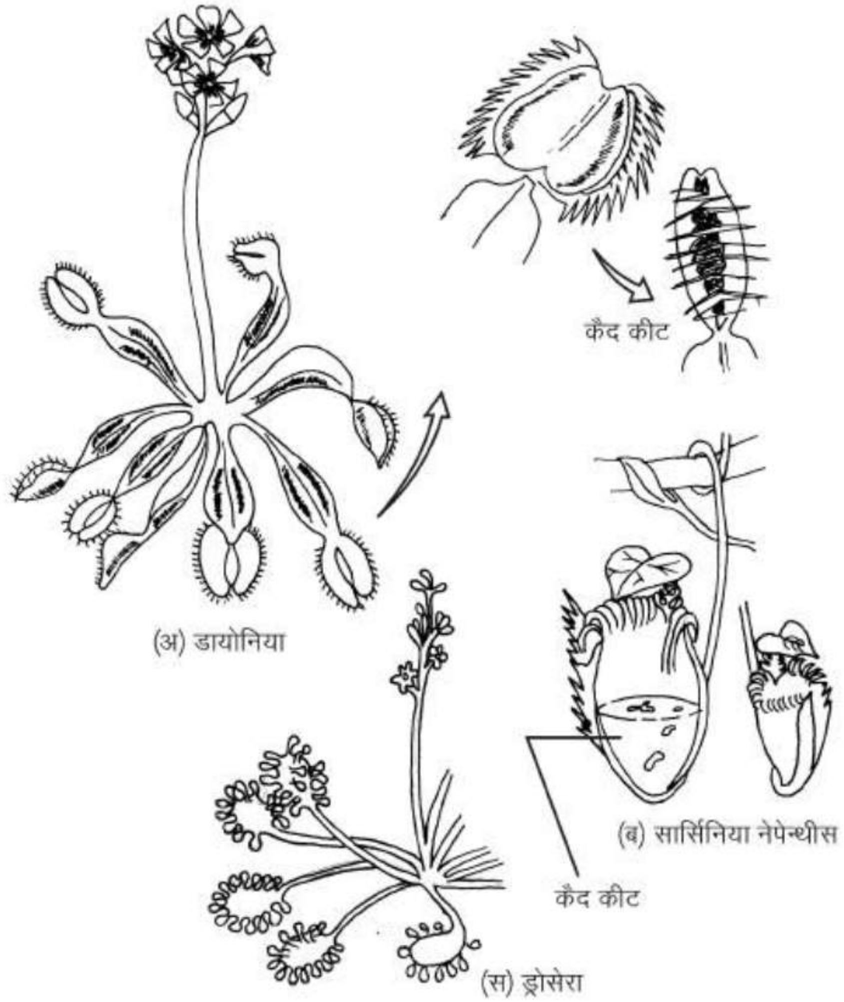

चित्र 1.17 : कीटभक्षी पादप (अ) डायोनिया (ब) नेपेन्थिस, (स) ड्रोसेरा

चारागाह क्षेत्र बनाता जा रहा है। शहरों के असीमित विस्तार, बड़े–बड़े भवनों का निर्माण, कारखानों, बाँधों, सड़कों एवं रेलमार्गों के निर्माण आदि के लिए वनस्पति का सफाया किया जा रहा है, फलस्वरूप अनेक समस्याओं जैसे पर्यावरणीय प्रदूषण, पर्यावरणीय तापमान का बढ़ना, प्राकृतिक संसाधनों में कमी आदि के कारण मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। इन सबके अतिरिक्त, पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर (भौगोलिक वितरण) वनस्पति के वितरण में मानव ने उपयोगी भूमिका निभाई है।

पारिस्थितिकीय नियम (Ecological Laws)

1. न्यूटन का नियम (Law of Minium)

सर्वप्रथम लीबिग (1843) ने यह बताया कि किसी भी जैविक समुदाय या व्यक्तियों के समूह या व्यक्तियों की सफलता कई कारकों पर निर्भर करती है एवं मुख्य रूप से उस कारक पर निर्भर करती है जिसकी मात्रा न्यूनतम हो। इसे लीबिग का न्यूनता का नियम कहते हैं।

उदाहरणार्थ – एक न्यूनपोषी झील में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा न्यूनतम होने पर उसमें प्रकाश संश्लेषण की दर कम होगी, इसी कारण उसमें प्राथमिक उत्पादकता भी कम होगी।

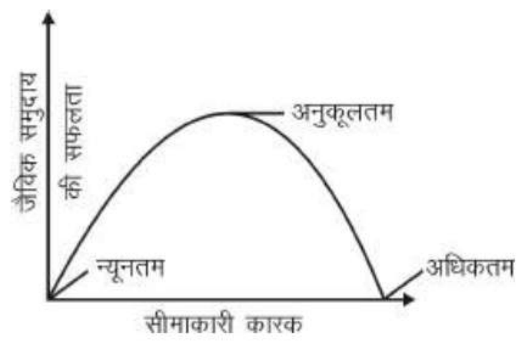

हालांकि उसमें अन्य सभी पोषक तत्वों की मात्रा अत्यधिक है। अगर इस झील में CO_2 की मात्रा बढ़ाई जाई तो प्राथमिक उत्पादकता में भी तेजी से वृद्धि होगी। लेकिन एक स्तर के पश्चात् उत्पादकता की दर में कोई वृद्धि नहीं होगी क्योंकि अब CO_2 की मात्रा सीमाकारी कारक बन जाती है। इस स्थिति में अन्य कोई कारक जो न्यूनतम मात्रा में उपस्थित है वह प्राथमिक उत्पादकता की दर का निर्धारण करेगा व उसकी मात्रा बढ़ाने पर उत्पादकता की दर में भी वृद्धि होगी।

2. सहनशीलता का नियम (Law of Tolerance)

प्रत्येक जीव का भौतिक कारकों के साथ एक सहनशीलता स्तर होता है। सेल्फोर्ड के अनुसार जातियों का वितरण उस पर्यावरणीय कारक पर निर्भर करता है जिसकी सहनशीलता का स्तर उस जीव जाति के लिए सीमित हो।

जीवों में एक कारक के प्रति सहनशीलता का स्तर विस्तृत और दूसरे किसी कारक के लिए सीमित हो सकता है। यह किसी भी एक भौतिक या रासायनिक कारक द्वारा जाति का वितरण सीमित हो सकता है। ऐसी जीव जातियाँ जिनकी सीमाकारी कारकों के लिए सहनशीलता की क्षमता विस्तृत हो उनका वितरण विश्वव्यापी होगा।

अगर परिस्थितियाँ एक कारक के लिए अनुकूलतम नहीं है तो अन्य कारकों के लिए सहनशीलता स्तर भी कम हो जायेगा। जैसे नाइट्रोजन की कम मात्रा में उपस्थिति सुखा के प्रति प्रतिरोधकता में कमी कर देती है। अगर जीव अपने अनुकूलतम स्तर पर नहीं पाया जाता है तो अन्य कारक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। जैसे स्पारटिना अल्टरनीफ्लोरा स्वच्छ जल में सर्वोत्तम रूप से वृद्धि करता है लेकिन यह दलदली लवणीय स्थलों पर पाया जाता है। यह अन्य पौधों के बजाय अपनी पर्णो से लवणों का बेहतर स्त्रवण कर सकता है। अतः यह लवणीय दलदली स्थानों के लिए सर्वोत्तम पादप है। पर्यावरणीय कारक जनन के दौरान अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। जनन करने वाले जीव, बीज, अण्डे, भ्रूण, नव पादप एवं लार्वा आदि की सहनशीलता स्तर वयस्कों के बजाय संकीर्ण होती है। जैसे वयस्क साइप्रस वृक्ष जल में बेहतर ढंग से जीवनयापन कर सकता है लेकिन नवपादपों के विकास के लिए शुष्क जमीन की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार वयस्क नील केंकड़ा उच्च क्लोराइड युक्त स्वच्छ जल में अच्छे से वृद्धि करता है लेकिन इसके लार्वा को वृद्धि करने के लिए समुद्री जल की आवश्यकता होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पृथ्वी की आयु 4–5 करोड़ वर्ष है तथा पृथ्वी पर सर्वप्रथम जीवन का उद्‌गम 3.5 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ।
2. सौरमण्डल में सूर्य के चारों ओर 8 ग्रह चक्कर लगाते रहते हैं जिनमें बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरूण व वरूण हैं।
3. ब्रह्माण्ड के उद्‌भव के बारे में बिग बेंग सिद्धान्त को सर्वाधिक मान्यता मिली जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड एक विशाल विस्फोट के साथ शुरू हुआ।
4. पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है जो 365¼ दिन में पूरा होता है। जबकि पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा चक्कर लगाता है जो एक चक्कर 27.33 दिनों में पूरा करता है।
5. सौरमण्डल में पृथ्वी ही एक मात्र ऐसा ग्रह है जहाँ जीव जन्तु पाये जाते हैं। पृथ्वी पर वायु और जल है जो जीवों के लिए आवश्यक है।
6. पृथ्वी के तीन भाग हैं – कोर, प्रावार एवं पर्पटी भाग।
7. पृथ्वी के आदि वायुमण्डल में अनेक गैसें CO_2, मीथेन, अमोनिया हाइड्रोजन, जलवाष्प उपस्थित थी। यह गर्म एवं ऑक्सीजन रहित थी।
8. पर्यावरण पृथ्वी के चारों ओर की परिस्थितियाँ या परिवेश है।
9. वातावरण के दो प्रकार के घटक होते हैं – (i) निर्जीव घटक (ii) सजीव घटक।
10. निर्जीव घटकों में प्रकाश, तापमान, वर्षा, मृदा आदि आते हैं।
11. सजीव घटकों में सूक्ष्मजीव, कवक, प्रोटोजोआ पौधे व प्राणी आते हैं।
12. पृथ्वी अपनी धूरी पर 24 घण्टे में एक बार लट्टू की तरह घूमती है इसलिए दिन व रात का चक्र 24 घण्टे का होता है।
13. मृदा में केशिका, रासायनिक बन्धित, गुरुत्वीय एवं आर्द्रता जल उपस्थित रहता है। केवल केशिका जल ही पौधों को उपलब्ध रहता है।
14. विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत मृदा का अध्ययन किया जाता है, मृदा विज्ञान (Pedology) कहलाती है।
15. मृदा परत का वह भाग जिसमें जन्तुओं व पौधों के मृत भागों का पूर्ण अपघटन न हुआ हो लिट्टर या करकट कहलाता है। लिट्टर के नीचे का भाग डफ एवं उसके नीचे पूर्ण अपघटित भाग ह्युमस कहलाता है।
16. जब दो विभिन्न प्रकार के जीवों को परस्पर साहचर्य में रहने पर दोनों को लाभ पहुंचता हो सहोपकारिता कहलाता है। उदा. लाइकेन, कवकमूल।

17. आधसहकारिता में संबंध दोनों जीवों के जीवित रहने के लिए आवश्यक नहीं होता है लेकिन साथ रहने पर दोनों को लाभ होता है।

18. वह संबंध जिसमें दो साथ रहने वाली भिन्न जातियों के जीवों में से एक जाति के जीव को लाभ होता हो तथा दूसरे को किसी प्रकार की हानि नहीं होती हो। सहभोजिता कहलाती है।

19. वे जीव जो अपना भोजन स्वयं न बनाकर दूसरों पर निर्भर रहते हैं, परजीवी कहलाते हैं।

20. दो जीवों का समूह जिसमें परस्पर दोनों को लाभ नहीं होता है। प्रतिजीविता कहलाती है।

21. दूसरों जीवों को खाने वाला जीव परभक्षी कहलाता है। पौधों को खाने वाला शाकाहारी एवं जन्तुओं को खाने वाला मांसाहारी कहलाता है।

22. वे पौधें जो कीटों को पकड़कर भोजन के रूप में काम लेते हैं, कीटाहारी पादप कहलाते हैं। उदा. ड्रोसेरा, डायोनिया, नेपेन्थीस आदि।

23. लाइकेन में शैवाल व कवक का साहचर्य एवं कवकमूल में कवक व उच्च पादपों की जड़ों के मध्य साहचर्य पाया जाता है।

24. आर्किड व वेन्डा अधिपादपों के उदाहरण है जबकि अमरबेल पूर्ण स्तम्भ परजीवी व ओरोबेंकी पूर्ण मूल परजीवी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. आधुनिक मान्यता के अनुसार सौरमण्डल में कितने ग्रहों की उपस्थिति मानी गई है–
   (अ) 7 (ब) 8
   (स) 9 (द) 10

2. पृथ्वी पर जीवन का उदभव कितने वर्षों पूर्व हुआ–
   (अ) 4.5 करोड़ वर्ष पूर्व (ब) 4.0 करोड़ वर्ष पूर्व
   (स) 3.5 करोड़ वर्ष पूर्व (द) 3.0 करोड़ वर्ष पूर्व

3. पृथ्वी लगभग कितने वर्ष पुरानी है–
   (अ) 5 करोड़ वर्ष (ब) 4 करोड़ वर्ष
   (स) 4.5 करोड़ वर्ष (द) 3 करोड़ वर्ष

4. चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर कितने दिनों में पूरा करता है–
   (अ) 27.33 दिन (ब) 24 दिन
   (स) 30 दिन (द) 365¼ दिन

5. सौरमण्डल के किस ग्रह पर जीवन पाया जाता है–
   (अ) मंगल (ब) बृहस्पति
   (स) बुध (द) पृथ्वी

6. पृथ्वी को ऊर्जा कहाँ से मिलती है–
   (अ) चन्द्रमा (ब) सूर्य
   (स) मंगल (द) बृहस्पति

7. पृथ्वी का गर्म व तरल भाग है–
   (अ) प्रावार (ब) पर्पटी भाग
   (स) क्रोड (द) उपरोक्त सभी

8. पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में कितना समय लगता है–
   (अ) 30 दिन (ब) 24 दिन
   (स) 27.33 दिन (द) 365¼ दिन

9. पृथ्वी के आदि वायुमण्डल में कौनसी गैस अनुपस्थित थी–
   (अ) अमोनिया (ब) कार्बन डाइऑक्साइड
   (स) मीथेन (द) ऑक्सीजन

10. इकोलोजी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया–
   (अ) राइटर (ब) टेन्सले
   (स) हेकल (द) डार्विन

11. जीवों के समूह एवं उनके पर्यावरण के मध्य के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन को कहा जाता है–
   (अ) भूगोल (ब) जीव विज्ञान
   (स) पारिस्थितिकी (द) मानव शास्त्र

12. MAB किसका संक्षिप्त रूप है–
   (अ) मानव एवं जैवमण्डल (ब) मानव एवं पर्यावरण
   (स) मानव एवं बायोम (द) मानव एवं बैक्टीरिया

13. दीर्घ दीप्तीकाली पौधों को कितने घण्टे का अंधकार काल आवश्यक होता है–
   (अ) 8 (ब) 10
   (स) 12 (द) 16

14. जिन क्षेत्रों में उच्च तापक्रम होता है वहाँ किस प्रकार की वनस्पति पाई जाती है–
   (अ) सदाहरित (ब) पर्णपाती

(स) एल्पाइन (द) मिश्रित शंकुधारी

15. कौनसे पौधे वायुमण्डलीय आर्द्रता को सीधे अवशोषित करते हैं–

    (अ) लाइकेन (ब) मॉस

    (स) आर्किड (द) उपरोक्त सभी

16. कौनसी मृदा जलाक्रान्त होती है–

    (अ) चिकनी (ब) दोमट

    (स) बलुई (द) गाद

17. मृदा में पाये जाने वाला किस प्रकार का जल पौधों को प्राप्त होता है–

    (अ) आर्द्रताग्राही (ब) केशिका

    (स) रासायनिक बन्धित (द) गुरुत्वीय

18. समुद्री एनीमोन एवं हरमिट क्रेब के मध्य कौनसा संबंध पाया जाता है–

    (अ) सहभोजिता (ब) सहोपकारिता

    (स) प्राकसहयोगिता (द) परजीविता

19. पूर्ण स्तम्भ परजीवी है–

    (अ) कुस्कुटा (ब) ओरोबेंकी

    (स) लोरेंथस (द) स्ट्राइगा

20. कीटाहारी पादप नहीं है–

    (अ) ड्रोसेरा (ब) नेपेन्थीस

    (स) डायोनिया (द) ओरोबेंकी

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (Very Short Answered Questions)

1. ब्रह्माण्ड किससे बनता है?
2. सौरमण्डल क्या है?
3. दिन व रात्रि का चक्र 24 घण्टे का ही क्यों होता है?
4. सूर्य के नजदीक ग्रह कौनसा है?
5. सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह कौनसा है?
6. पृथ्वी पर जीवन धारण के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ क्या है?
7. ह्युमस व डफ में क्या अन्तर है?
8. पारिस्थितिकी की परिभाषा लिखिए।
9. लघुदीप्तीकाली पौधे क्या है?
10. लिट्टर क्या है?
11. पीडोलोजी की परिभाषा दीजिए।
12. सहभोजिता क्या है?
13. प्राक्सहयोगिता किसे कहते हैं?
14. एलीलोपेथी क्या है?
15. किस प्रकार की मृदा खेती के लिए उपयुक्त होती है?
16. कवकमूल में किसका साहचर्य होता है?
17. विश्व का सबसे बड़ा पुष्प कौनसा है?
18. मृदा में नाइट्रोजन स्थायीकरण करने वाले जीवाणु कौनसे हैं?
19. खनिजीकरण क्या है?
20. होलार्ड किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Answered Questions)

1. बिग बेंग सिद्धान्त क्या है?
2. ब्रह्माण्ड किससे मिलकर बनता है?
3. सौरमण्डल की संरचना कैसी होती है?
4. पृथ्वी के आदि वायुमण्डल की क्या विशेषताएं थी?
5. पृथ्वी की संरचना को समझाइए।
6. पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई?
7. सूर्य के विभिन्न ग्रहों को समझाइए।
8. मृदा परिच्छेदिका की विभिन्न स्तरों को समझाइए।
9. सहोपकारिता एवं परजीविता में क्या अन्तर है?
10. जलवायवीय कारकों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
11. सहनशीलता का नियम क्या है?
12. न्यूनता का नियम क्या है?
13. दीप्तीकालिता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
14. तापमान का वनस्पति वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? समझाइए।
15. सहभोजिता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
16. भूआकृतिक कारकों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
17. सूर्यतापी एवं छायातापी पादपों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
18. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
    (i) अधिपादप
    (ii) आधसहकारिता
19. परभक्षिता एवं प्रतिजीविता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
20. धनात्मक अन्योयक्रियाएं क्या है?टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answered Questions)

1. जलवायवी कारकों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. सौरमण्डल एवं इसके विभिन्न ग्रहों पर विस्तार से वर्णन लिखिए।
3. मृदीय कारकों को विस्तार से समझाइए।
4. धनात्मक व ऋणात्मक अन्योन्यक्रियाओं के विभिन्न प्रकारों को विस्तार से समझाइए।
5. पृथ्वी के उद्‌भव एवं इस पर जीवन के विकास की अवधारणा को विस्तारपूर्वक समझाइए।
6. निम्न पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए–

   (अ) भूवैज्ञानिक चक्र

   (ब) सहोपकारिता

उत्तरमाला: 1 (ब) 2 (स) 3 (स) 4 (अ) 5 (द)
6 (ब) 7 (स) 8 (द) 9 (द) 10 (अ)
11 (स) 12 (अ) 13 (अ) 14 (अ) 15 (द)
16 (अ) 17 (ब) 18 (स) 19 (अ) 20 (द)